चतुर्थ अध्याय

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में परंपरा और आधुनिकता

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी के कई नाटककारों ने अपने से पूर्व के नाटककारों की परिपाटी का अनुसरण किया है। जिनमें नाटक संबंधी विषय-वस्तु,पात्र-योजना एवं नाट्य उद्देश्य ग्रहण किया है। उनके नाटकों की विशेषता यह है कि उन्होंने मिथकीय कथा एवं ऐतिहासिक पात्रों के समावेश से आधुनिक मानवीय विसंगतियों को चित्रित किया है, वहीं उनके नाटक परंपरा और आधुनिकता के तत्वों को परिभाषित करने में सहायक हैं। जिन नाटककारों ने स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक मिथकीय कथानकों को आधुनिक रूप से विस्तार दिया, उनमें धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, दुष्यन्त कुमार, रमेश बख्शी, नरेश मेहता, नरेंद्र मोहन और भीष्म साहनी आदि नाटककारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी नाटककारों की इसी कड़ी में एक नाम सुरेन्द्र वर्मा का भी आता है। जिन्होंने अभिजातवर्गीय मूल्यों, उनके संस्कारों और अपने समकालीन आम जीवन की समस्याओं को अपना नाट्य विषय-वस्तु बनाया है। सुरेन्द्र वर्मा ने भी अपने नाटकों का कथ्य अपने से पूर्व के नाटककारों की भाँति मिथक, पुराण एवं इतिहास से लिया है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों की विशेषता यह है कि वे मिथक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानक होते हुए भी आधुनिक मानव के जीवन तथा मानवीय रिश्तों की गहराई से पड़ताल करते हैं। जिसके कारण नाटक का कथ्य जीवंत हो उठता है। डॉ. गिरीश रस्तोगी इसी संदर्भ में लिखते हैं, ‘‘नाटककार प्रसाद की तरह न तो इतिहास के द्वारा अतीत के गौरव की प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक चेतना में पुनर्जागरण का लक्ष्य लेकर चलते हैं न प्राचीन इतिहास को वर्तमान से जोड़कर उसकी पुनरावृत्ति करते हैं, बल्कि इतिहास यहाँ केवल एक आधार है’’।[1]

इस प्रकार सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों का मुख्य उद्देश्य ऐतिहासिक नाट्य चरित्रों के माध्यम से कथा मात्र कहना नहीं है बल्कि उसके माध्यम से आज के समकालीन समाज में लोगों के अन्दर चल रहे अंतर्विरोधों और उनकी मूल समस्याओं को उजागर करना है। मिथक एवं ऐतिहासिक कथानक यहाँ आधुनिक मानवीय समस्याओं को रूपायित करने का उपकरण मात्र है। इस संदर्भ में डॉ. मदान लिखते हैं, ''इतिहास उपकरण मात्र है जिसका उपयोग कथ्य को अधिक परिपुष्ट और प्रभावशाली बनाने के लिए करते हैं। उनकी मूल निष्ठा अपने कथ्य के प्रति है। ऐतिहासिक घटनाओं या चरित्रों के प्रति नहीं, अपने कथ्य के अनुरूप घटनाओं की सृष्टि या प्राचीन चरित्रों को बिल्कुल आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रतीक में प्रस्तुत करने में उनको हिचक नहीं होती।''[2] डॉ. मदान की इस टिप्पणी से सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों का उद्देश्य परिभाषित हो जाता है।

सुरेन्द्र वर्मा मिथक, पुराण एवं इतिहास को अपने नाटकों का साधन बनाकर परंपरा का निर्वाह करते हैं, साथ ही नाट्य रचना संसार को एक विस्तृत फलक देने का प्रयत्न भी करते हैं। दूसरी ओर उन ऐतिहासिक-पौराणिक चरित्रों की मिथक कथाओं के माध्यम से ही उन्हें जीवंत रखने का प्रयत्न करते हैं। जिससे नाट्य कृत्य और अधिक संप्रेषणीय एवं प्रभावशाली बन उठते हैं। इस प्रकार समकालीन आधुनिक दृष्टिकोण से कथा और पात्रों का सृजन, सुरेन्द्र वर्मा ऐसे करते हैं कि उनके नाटकों में परंपरा और आधुनिकता एक साथ देखने को मिल जाती हैं। जिससे उनके नाटकों को एक विशिष्ट पहचान प्राप्त होती है।

सुरेन्द्र वर्मा अपने नाटकों में मिथकीय पौराणिक कथा एवं ऐतिहासिक पात्रों का प्रयोग आधुनिक मानवीय भाव-बोध के लिए करते हैं। 1972 ई. में 'तीन नाटक' नाम से एक नाट्य संग्रह प्रकाशित हुआ था। जिसमें 'सेतुबंध', 'नायक खलनायक विदूषक', और 'द्रौपदी' तीन ऐसे नाटक हैं जिनमें परंपरा और आधुनिकता दोनों के ही तत्व देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सुरेन्द्र वर्मा अपने शेष नाटकों में भी परंपरागत चरित्रों और पौराणिक मिथकीय कथानक के माध्यम से आधुनिक जीवन की जटिलताओं और द्वंद्व को ही चित्रित करते हैं, " 'द्रौपदी' का केंद्रीय पात्र आज का संघर्षशील

प्राणी मनमोहन है और इन पाँचों चेहरों से जूझती मनमोहन की पत्नी सुरेखा 'द्रौपदी' के मिथक को अपने में व्यंग्यात्मक स्तर पर चरितार्थ करती है।''[3] कनक और कुमार 'शकुन्तला की अंगूठी' नाटक में एक आधुनिक समकालीन पात्र की भूमिका में हैं, किंतु जिस प्रकार से इनका पात्र चरित्र उभर कर सामने आता है वे अभिज्ञान शाकुन्तलम के शकुन्तला और दुष्यंत प्रतीत होते हैं। इसलिए सुरेन्द्र वर्मा इन पात्रों को आधुनिकता के तत्त्वों द्वारा इन्हें समकालीन समस्याओं से जोड़ते हैं। इसी प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने अपने अन्य नाटकों जैसे 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'छोटे सैयद बड़े सैयद', 'कैद-ए-हैयात', आदि में अपने आधुनिक समकालीन जीवन की अभिव्यंजना के लिए अपनी परंपरा से ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं को माध्यम बनाया है।

सुरेन्द्र वर्मा अपने नाटकों में परंपरा और आधुनिकता का प्रयोग इतनी बखूबी से करते हैं कि समकालीन जीवन एवं ऐतिहासिकता का बोध एक साथ ही हो जाता है। इसी समकालीन आधुनिक जीवन बोध की पड़ताल हम परंपरा और आधुनिकता के संदर्भ में करेंगे।

4.1 सेतुबंध

सन 1972 ई. में 'तीन नाटक' नाम से लिखे गये नाट्य-संग्रह का यह पहला नाटक है। सुरेन्द्र वर्मा का यह नाटक आधुनिक युग के मानवीय रिश्तों और उनके अस्तित्व की तलाश में भटकते मनुष्यों की कथा को आधार बना कर लिखा गया नाट्य रूप है। नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने 'चन्द्रगुप्त', 'कालिदास', 'प्रभावती', 'प्रवरसेन' आदि ऐतिहासिक पात्रों का मिथकीय कथा के साथ समावेश कर आधुनिक मनुष्यों की समस्याओं को उठाया है। कथा के केंद्र में एक ओर सत्ता के मद में चूर चन्द्रगुप्त और उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा है, जिसमें पिसता है उनकी पुत्री प्रभावती और कालिदास का प्रेम। वहीं दूसरी ओर नाट्य कथा का केंद्र है प्रवरसेन और उनके अस्तित्व का संकट जिसका संबंध जुड़ा होता है उनकी माता प्रभावती और कालिदास से। नाटक में इन्हीं उलझे हुए रिश्तों को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। नाटक के कथानक पर दृष्टि डालें तो नाटक का

संबंध चन्द्रगुप्त की राजनैतिक महत्त्वकांक्षा के परिणाम स्वरूप सम्पन्न उनकी पुत्री प्रभावती के राजनीतिक विवाह से है। कहते हैं राजनीति और सत्ता का मद इतना होता कि उसके आगे कुछ भी नहीं दिखता है। सारी भावनाएँ राजनीति की सीढ़ियों पर दम तोड़ देती हैं। सत्ता का नशा और उससे जुड़ा राजनैतिक लाभ प्रभावती और कालिदास को एक नहीं होने देते हैं। जिसके पश्चात् प्रभावती का विवाह वाकाटक के राजकुमार रूद्रसेन के साथ सम्पन्न कर दिया जाता है। जिसमें चन्द्रगुप्त का उद्देश्य अपनी राजनैतिक सीमाओं को बढ़ाना होता है, "इस ब्याह से दोहरे उद्देश्य पूरे होंगे- वाकाटक गुप्त सम्राट के प्रभाव क्षेत्र में आ जाएँगे और शक उनके अधिकार क्षेत्र में ..मालवा, गुजरात और सौराष्ट की बहुत उपजाऊ भूमि के हाथ में आ जाने से एक ओर तो शासन की समृद्धि बढ़ेगी और दूसरी ओर साम्राज्य सीमाएँ बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक निर्बंध फ़ैल जाएंगी। दिग्विजय पूरी होने के बाद एक देश में एक सम्राट का एकछत्र शासन होगा।"[4] सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रभावती को नैतिक कर्तव्यों की दुहाई देकर कालिदास को छोड़ रुद्रसेन से विवाह करने के लिए विभिन्न तर्क देते है। भारतीय समाज में स्त्रियों को हमेशा से ही उनकी इच्छा के विरुद्ध विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक और रिश्तों का वास्ता और दुहाई देकर विवाह के लिए मजबूर किया जाता रहा है। चन्द्रगुप्त भी प्रभावती से कहता है, "प्रभावती गुप्तवंश की राजदुहिता है, इसलिए साम्राज्य की कीर्ति समय के विराट विस्तार में एक तरह से उन्हीं के नाम का प्रक्षेपण है। जिस कुल का रक्त उनकी नशों में दौड़ रहा है, उसे इतिहास के पन्नों में चिरस्थायी बनाने के लिए क्या उन्हें अपना हठ नहीं छोड़ देना चाहिए?"[5] नैतिक कर्तव्यों की दुहाई के बावजूद प्रभावती अपने निश्चय पर अडिग रहती है और फिर चन्द्रगुप्त एक शासक की भाषा में प्रभावती को चेतावनी दे डालता है, "आज जो आश्रयदाता उदार और कृपालु है, वह कल कठोर और दंडविधायक भी हो सकता है। क्या प्रभावती यह चाहेगी कि एक नवोदित कवि, जिसमें विलक्षण प्रतिभा है, जिसका यश, जिसकी कीर्ति दिगदिगान्तर में गूंज सकती है, कारागार की किसी अंधेरी कोठरी में एड़िया रगड़-रगड़ के मरे ? केवल इसलिए कि प्रेम अंधा था।"[6] प्रभावती आखिरकार कालिदास के सुनहरे भविष्य के लिए वाकाटक राजकुमार रुद्रसेन

से विवाह करना स्वीकार कर लेती है और राजनैतिक वेदी पर प्रेम की बलि चढ़ा कर प्रभावती का विवाह रुद्रसेन के साथ सम्पन्न कर दिया जाता है, साथ ही अलग हो जाते हैं दो प्रेमी। इस प्रकार प्रभावती का भावनात्मक शोषण कर चन्द्रगुप्त अपना राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध कर लेता है। राजनैतिक स्वार्थ आधारित सत्ता केवल इतिहास में ही नहीं, बल्कि आज समकालीन राजनीति में भी देखी जा सकती है। जहाँ सत्ता लोलुप शासक न सिर्फ जनता, बल्कि कई बार अपनों की खुशियों की हत्या करने से भी नहीं चूकते हैं। नाटककार प्रभावती और चन्द्रगुप्त के इस प्रसंग के माध्यम से आज की राजनीति का विश्लेषण करते हैं। आज के राजनेता अपने सत्ता विस्तार के लिए सारे हथकंडे अपनाते हैं, जिनमें मानवीय मूल्य, भावना आदि का कोई स्थान नहीं होता है।

विवाह के पश्चात् प्रभावती वाकाटक नरेश की राजवधू तो बन जाती है, किन्तु उसकी आत्मा उज्जयनी में ही कालिदास की स्मृतियों में संयोजित रहती है। इसलिए विवाह के पश्चात् प्रभावती दो हिस्सों में विभाजित रहती है। शरीर से वह रुद्रसेन की होती है पर मन-आत्मा से वह कालिदास की ही रह जाती है।

इस घटना के वर्षों पश्चात् जब प्रभावती का पुत्र प्रवरसेन अपनी माता के जीवन की इस सच्चाई से वाकिफ होता है तो बहुत ही टूट जाता है और इससे संबंधित कई सवाल अपनी माता प्रभावती से करता है। जिसके उत्तर में प्रभावती सारा वृत्तांत अपने पुत्र प्रवरसेन को कह सुनाती है और कहती है, "जब हामी भरी थी, तभी अपने भावी जीवन की रूपरेखा जैसे मानचित्र की तरह सामने खिंच गयी थी। वे कुछ काली-काली सपाट लकीरें थीं; टेढ़ीमेढ़ी, उलझी हुई..वहाँ न हृदय का स्पंदन था, न साँसों का आवेग, न भावनाओं का ज्वार न कामनाओं की तरंग..मन को तरह-तरह से समझा लिया था कि यह एक राजनैतिक ब्याह है। इसका भावनात्मक मूल्यांकन कभी न करना। क्योंकि संबंध किसका होना था ? सम्राट की पुत्री का। मैं, प्रभावती उसमें कहीं नहीं थी। था केवल जन्म का आकस्मिक संयोग-इसीलिए वाकाटक वंश की राजवधू बनकर नंदिवर्धन जो आयी, वह गुप्त सम्राट की राजदुहिता थी-सजल नैनों पर दुकूल रखे प्रभावती उज्जयिनी के राजप्रासाद में ही छूट गयी

..कौन समझेगा कि मेरी भावना आज तक कुमारी है ..मैं माँ बनी हूँ, लेकिन पत्नी नहीं।"[7] आज के समकालीन समाज में भी प्रभावती के समान बहुत सारी स्त्रियाँ अपनी इच्छा और भावना की तिलांजलि देकर अपने परिवार और कुल की रक्षा के नाम पर अंतरात्मा को मार देती हैं और अन्यत्र परिवार के दवाब में आकर विवाह कर लेती हैं, पर वह शरीर और आत्मा से दो हिस्सों में बट जाती हैं। अतः प्रभावती उन सभी स्त्रियों की प्रतीकात्मक चरित्र है, जिसकी कल्पना सुरेन्द्र वर्मा ने इस नाटक में प्रभावती के रूप में की है। यहाँ नाटककार ने कोई समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं किया है, बल्कि एक राजनैतिक शासकीय व्यवस्था-तंत्र के अहम् और उसमें होम होती मानवीय अंतरात्मा को नाट्य विधा के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

संतान, पति और पत्नी के बीच शारीरिक और भावनात्मक मिलन का ही स्वरूप होता है। अतः पति-पत्नी के बीच सेतु का काम और एक ठोस आधार प्रदान करने का काम संतान करती है। लेकिन जब संतान के लिए कोई स्त्री माता तो हो, किन्तु वही स्त्री अपने पति के लिए अंतरात्मा से उसकी पत्नी नहीं बन पाई हो तब उस स्त्री की भावना कुँवारी ही रह जाए तो ऐसे में कोई संतान दोनों के बीच का सेतु कैसे बन सकता है ? जैसे हालात माता प्रभावती और उसके पुत्र प्रवरसेन के परिस्थितियों में होते हैं। जहाँ प्रभावती अपने आत्मवरण को पुत्र प्रवरसेन के समक्ष स्वीकार करती है और साथ ही उसके सभी सवालों का उत्तर भी देती है। वह कहती है, "परंपरागत शब्दों को छोड़ दो। क्या कोई स्थिति ऐसी नहीं हो सकती जिसमें परपुरुष पति बन जाए और पति परपुरुष।"[8]

'सेतुबंध' में अस्मिता संकट उसकी सार्थकता जैसे आधुनिक मानवीय समस्याओं के प्रश्नों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में उठाने का प्रयास किया गया है। इन प्रश्नों को नाटककार ने प्रवरसेन के माध्यम से किया है। जहाँ प्रवरसेन को अपने अस्तित्व का ज्ञान होने के बाद उसे उसकी अस्मिता खंडित दिखती है। अपनी माता प्रभावती से यह जान कर कि वह एक राजनैतिक विवाह और उसके परिणाम स्वरूप, विवशता में बने संबंध का एक जीवित मानवीय रूप है, तब उसकी अंतरात्मा को बहुत ही आघात पहुँचता है और वह अन्दर से बिल्कुल टूट जाता है। वह कहता है, "मैं क्या हूँ ? मैंने क्या

किया है ? शासन ? लेकिन वह तो जन्म का आकस्मिक संयोग है, सत्ता का चमत्कार सांस के टूटते ही समाप्त हो जाता है। राज सिंहासन पर जो बैठता है, वह वाकाटक नरेश है। वहाँ , प्रवरसेन कहीं नहीं आता।.. तब फिर मैंने क्या पाया ? मेरी व्यक्तिगत उपलब्धि क्या है ?.. अगर कालिदास की स्वीकृति भी सच्ची नहीं है, तब फिर में अपने पिताजी की तरह एक औसत व्यक्ति हूँ। मेरा सेतु भी आधा या चौथाई या तिहाई है- कीचड़ और काई-सना..घुन और जंग लगा ..भग्न ..जर्जर.. कंकालवत्"[9]

इस प्रकार नाटककार ने इस नाटक में चन्द्रगुप्त की राजनैतिक लालसा, प्रभावती के अन्दर की परंपरागत समझौतावादी भारतीय नारी तथा प्रवरसेन द्वारा अपनी अस्मिता की खोज आदि प्रसंगों के माध्यम से आज की आधुनिक मानवीय आकांक्षा, उसके द्वंद्व , पीड़ा और अस्मिता को तलाशनें जैसे मूल प्रश्नों को उठाया है, "व्यक्ति अपनी आंतरिक आँखों से अपने को देखना समझना चाहता है- यह उसकी बेचैनी, विवशता और आवश्यकता है, वह दूसरे की आँखों से ही अपना मूल्य आंकना नहीं चाहता और न केवल आकस्मिक संयोग मात्र बनकर रह जाना चाहता है। व्यक्ति की यही छटपटाहट इस नाटक का विशेष पहलू है।"[10]

पात्र ही नाटकों में विचारों को संप्रेषित करने का कार्य करता है। पात्र ही अपने संवादों और भाव-भंगिमाओं के अभिनय से नाटक को पूर्णता की ओर लेकर जाता है। मूल संवेदना भी नाट्य पात्रों के माध्यम से ही पूर्ण होती है। वस्तुतः किसी भी नाटक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि किसी भी नाटक का पात्र अपने चरित्र में कितना ढल कर नाटक की कथावस्तु को अपने अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत करता है। मूलत : पात्र नाटककार के विचारों और दृष्टिकोणों को ही अपने अभिनय द्वारा प्रस्तुत करता है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों के पात्र परंपरा और आधुनिकता के संदर्भ में द्वंद्वात्मक जीवन यापन करते हैं। एक ओर तो परंपरा का अनुशीलन करते हैं तो वहीं आधुनिकता उनके व्यक्तित्व में दिखती है। इसी द्वंद्व को सुरेन्द्र वर्मा ने अपने पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है।

प्रवरसेन-

'सेतुबंध' नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने प्रवरसेन का चित्रण एक आधुनिक संदर्भ में किया है, जहाँ आज व्यक्ति अस्तित्व के संकट से जूझ रहा है। यूँ तो इतिहास पर दृष्टि डालें तो प्रवरसेन वाकाटक के राजा थे। किंतु इस नाटक में इनके माध्यम से समकालीन समाज में अस्तित्व के संकट को लेकर इन्हें चित्रित किया गया है। यदि परंपरा की बात करें तो प्रवरसेन संवेदना के स्तर पर परंपरावादी विचारों के हैं। प्रवरसेन को जब अपनी माता के प्रेम संबंध के विषय में पता विवाहपूर्व कालिदास से चलता है तो वह बेचैन हो उठता है, क्योंकि उसके लिए उसकी माता पूजनीय-वंदनीय है। इसलिए वह प्रभावती अर्थात् अपनी माता से प्रश्न करता है, ''तुमने वैवाहिक मर्यादा का उल्लंघन किया है। पति के होते परपुरुष की चाह। परपुरुष आया ही क्यों ? ऐसी क्या विवशता थी ? क्यों न कोई ऐसा रास्ता खोज लिया कि पति ही सही मायने में पति हो जाता है।''[11] प्रवरसेन अपने अस्तित्व के संकट से इतना आहत रहता है कि वह आवेग में अपनी सारी मर्यादा तोड़ परंपरा का अतिक्रमण कर अपनी माता से प्रश्न कर उठता है, ''संतान, पति और पत्नी को सेतु की तरह जोड़ देते हैं। लेकिन मेरे जन्म के बाद तो तुम दोनों के बीच की खाई और बढ़ गई होगी। मुझे देखते ही तुमको वे क्षण डसने लगते होंगे, जब उस रात तुम्हारे न चाहते हुए भी उस व्यक्ति ने तुम्हें छुआ था... उस अनुभव का विषैलापन, उस प्रक्रिया से निकलने की पीड़ा मैंने कितनी बार जगाई होगी।''[12]

आज की आधुनिक समाजिक परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी ही हैं। आज जिस प्रकार पश्चिमी सभ्यता और परंपरा का अनुकरण भारतीय समाज करता जा रहा है, वहाँ अस्तित्व का संकट मंडराना स्वाभाविक है। हमारी परंपरा में एक स्त्री या एक पुरुष का जीवन में आना, विवाह पूर्व शारीरिक संबंध बनाना अनैतिक है। ऐसे में आधुनिककालीन अस्तित्व संबंधी यह सवाल कई व्यक्ति विशेष के हो सकते हैं, जैसे प्रवरसेन भी अपनी माता से अपने अस्तित्व पर सवाल पूछता है। जिसके उत्तर में उसकी माता उसे बताती है कि उसमें वह अपने प्रेमी अर्थात् कालिदास की प्रतिछाया देखती है।

जिससे प्रवरसेन टूट जाता है। वह अपनी माता से कहता है, ''इस जानकारी के बाद मेरा जीना कितना कठिन हो गया, ये कौन जानता है- मुझमें से जीवन की सारी सार्थकता निचोड़ ली।''[13]

इस प्रकार प्रवरसेन आधुनिक मनुष्य की भांति अपने अस्तित्व के संकट से जूझता रहता है और अपनी माता से उसके जीवन को जानने के बाद खुद के अस्तित्व पर संदेह करने लगता है। उसे अपने जीवन की सार्थकता और उपलब्धियों पर संदेह होने लगता है। वह अपने आप से प्रश्न करता है, ''मैं क्या हूँ ? मैंने क्या किया ? अगर कालिदास की स्वीकृति भी सच्ची नहीं है, तब फिर मैं भी अपने पिता की तरह एक औसत व्यक्ति हूँ। अधिकतर सेतुओं के समान मेरा सेतु भी आधा या चैथाई या तिहाई है- कीचड़ और काई सना-घून और जंग, लगा भग्न-जर्जर कंकालवत।"[14]

प्रभावती-

'सेतुबंध' नाटक में प्रभावती परंपरावादी एवं आधुनिक दोनों ही रूपों में चित्रित की गई है, जो अपने पुत्र के सवालों का पूरी स्पष्टता से उत्तर देती है। जिससे उसमें आधुनिक स्त्री की हमें झलक मिलती है। वहीं दूसरी ओर वह माता, पत्नी और प्रेमिका तीनों ही रिश्तों को पूरी निष्ठा से निभाती है। जिससे उसके चरित्र में एक भारतीय परंपरागत स्त्री की छवि दिखती है, जिसमें त्याग की भावना है। जो अपना सर्वस्व निछावर कर दूसरे के व्यक्तित्व निर्माण में निमित्ति बन जाती है। लेकिन स्त्री भावना की सदैव उपेक्षा ही हुई है। प्रभावती तभी अपने पुत्र से कहती है, ''माता हूँ लेकिन स्त्री भी तो हूँ। क्योंकि माँ हूँ, इसलिए स्त्री होने का अधिकार नहीं... कौन समझेगा कि मेरी भावना आज तक कुमारी है... मैं माँ बनी हूँ लेकिन पत्नी नहीं।''[15] इस प्रकार प्रभावती में वाक् स्पष्टता है। उसमें आधुनिकता की झलक मिलती है। साथ ही इस प्रसंग से, इन भावनाओं से उसके अंदर परंपरावादी स्त्री की झलक भी देखी जा सकती है। क्योंकि उसने पिता के दवाब और अपने प्रेम की रक्षा हेतु अपने प्रेम का त्याग किया। प्रभावती पर दबाब डाला गया था कि वह अपने प्रेमी कालिदास का त्याग कर दे, जिसके लिए उसने प्रभावती से कहा, ''चन्द्रगुप्त: आज जो आश्रयदाता उदार और कृपालु है, वह

कल कठोर और दण्ड विधायक भी हो सकता है, क्या प्रभावती चाहेगी कि एक नवोदित कवि, जिसमें विलक्षण प्रतिभा है, जिसका यश और जिसकी कीर्ति दिग्दिगंतर में गूंज सकती है, कारागार की किसी अंधेरे कोठरी में एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर मरे ? केवल इसलिए कि प्रेम अंधा था। उसने अपनी दोनों बाहों में आकाश को बांध लेना चाहा था।"[16]

प्रेम में सर्वस्व निछावर करना, त्याग करना हमारी भारतीय परंपरा में पहले भी देखा गया है। उसी परंपरा का निर्वाह करते हुए प्रभावती भी कालिदास के जीवन एवं उसके उज्जवल भविष्य के लिए अपने प्रेम अर्थात् कालिदास का परित्याग कर देती है। कालीदास का त्याग करने के वर्षों बाद भी प्रभावती अपने प्रेम को भूला नहीं पाती है। वह अपने पुत्र में अपने पति से अधिक अपने प्रेमी कालिदास के गुणों की झलक पाती है। साथ ही अपने जीवन की सार्थकता और खुशी इसी में पाती है। खुद प्रवरसेन के बचपन की स्मृतियों में कुछ शेष है जो इस बात की पुष्टि करता है कि विवाह के पश्चात् प्रभावती अर्थात् उसकी माता की दशा कैसी थी। प्रवरसेन अपनी स्मृतियों को टटोलते हुए याद करता है, ''बचपन के कच्चे दिनों से बहुत कुछ देखता आ रहा हूँ। मन पर कितनी ही छवियाँ अंकित हैं, कितने पर्यवेक्षण, कितने अनुभव खण्ड उन सबकों जोड़कर माँ का जो चित्र बनता है, वह बहुत उदास जैसे घने अंधकार की पृष्ठभूमि में सहस्त्रों दीपमालाओं से आलोकित बिल्कुल निर्जन राजप्रसाद जैसे तपती दोपहर में किसी प्यासे चातक की कातर पुकार जैसे दो निर्दोष आंखों की निरंतर अश्रुवर्षा।''[17] इस 'सेतुबंध' नाटक में प्रभावती के चरित्र का विश्लेषण करें तो सुरेन्द्र वर्मा ने परंपरावादी और आधुनिक दोनों ही रूपों में उसका चित्रण किया है। वाकाटक युवराज से विवाह कर जहाँ अपने पिता की राजनैतिक आकांक्षा पूरी कर देती है, वहीं अपने प्रेम का त्याग कर उसके जीवन और सुनहरे भविष्य की रक्षा भी करती है। यह त्याग समर्पण की भावना प्रभावती जैसी परंपरागत भारतीय नारियों की ही रही है। अतः जिसे परंपरा का बोध हो वही आधुनिक भी हो सकता है। इस सन्दर्भ में प्रभावती के चरित्र में आधुनिकता का परिचय हमें तब मिला है जब उनका पुत्र प्रवरसेन अपने अस्तित्व से जुड़े प्रश्न करता है। जिसके उत्तर में प्रभावती शुरूआत से अपने

विवाह से जुड़ी सारी कथा तथा कालिदास के साथ अपने प्रेम संबंध की सारी बातें अपने पुत्र प्रवरसेन को निःसंकोच बता देती है। अतः जो तर्क-वितर्क देती है, उसमें एक आधुनिक वाक् स्पष्ट नारी के स्वरूप का दर्शन होता है।

चन्द्रगुप्त-

चन्द्रगुप्त के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने आज के समकालीन राजनीतिज्ञों के चरित्र पर प्रकाश डाला है। आज जिस प्रकार राजनेता अपने लाभ के लिए, राजनीति में अपना कद ऊँचा करने के लिए हर दांव-पेंच लगाते हैं, वैसे ही 'सेतुबंध' नाटक में भी चन्द्रगुप्त एक राजनीति के तहत अपनी पुत्री का जीवन और उसके प्रेम की बलि चढ़ा देता है। जिस प्रकार राजनेता के आगे सत्ता से बढ़कर कुछ नहीं होता, उसी प्रकार चन्द्रगुप्त अपनी सत्ता और उसकी उन्नति के लिए अपना ईमान, धर्म, अंतरात्मा यहाँ तक की प्रभावती की खुशियों का भी ख्याल नहीं करता। अतः प्रभावती का विवाह कालिदास से न करवाकर प्रस्ताव वाकाटक नरेश के पास भेजते हैं, क्योंकि इस विवाह से भविष्य की कई संभावनाएं बढ़ जा रही थीं। अतः प्रभावती के विवाह का प्रस्ताव वाकटक नरेश को भेजा जाता है, ''ब्याह से दोहरे उद्देश्य पूरे होंगे- वाकाटक गुप्त सम्राट के प्रभाव क्षेत्र में मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र की बहुत उपजाऊ भूमि के हाथ में हो जाने से एक तो शासन की समृद्धि बढ़ेगी और दूसरी ओर साम्राज्य की सीमाएँ बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक निषेध फैल जाएँगी। दिग्विजय पूरी होने के बाद एक देश में एक सम्राट का एकछत्र शासन होगा। जो समय, साधन और शक्ति आपसी युद्धों में बेकार जा रही है, जनकल्याण में लगेगी। शक्ति और सद्भावना के वातावरण में साहित्य और कला की उपलब्धियाँ गगन चुंबी ऊँचाइयों को छू लेगी और सभ्यता और संस्कृति को गुप्त युगों की अमूल्य देन सहस्त्रों शताब्दियों तक याद की जाएगी।''[18] इस प्रकार चन्द्रगुप्त का विश्लेषण करें तो वह एक महत्त्वकांक्षी शासक है जो अपने राज्य, सत्ता, यश की उन्नति हेतु कुछ भी कर सकता है। उसकी आकांक्षा ऐसी होती है कि उसका यश दूर-दूर तक के राज्यों में सुना जाए, वह अपनी उपलब्धियों के साथ कई और उपलब्धियाँ जोड़ना चाहता है, ''एकाधिकारी सत्ता का विशेषण महाराजाधिराज

शक्ति का प्रतीक सिंह विक्रम कलात्मक संस्कारों का सूचक रूपाकृति नकक्षत्राय रुद्रसिंह का दमन करके में रुद्रदमनकर्ता।''[19]

चन्द्रगुप्त के लिए पुत्री की खुशी से बढ़कर एकछत्र राज करना है। अतःअपने सत्ता विस्तार हेतु दो प्रेमी युगल को सदा के लिए अलग कर देते हैं अर्थात् प्रभावती और कालिदास हमेशा के लिए अलग हो जाते हैं। जिसके लिए चन्द्रगुप्त अपनी पुत्री को प्रेम की भाषा में समझाते हैं। वे कहते हैं कि वह कालिदास को त्याग कर वाकाटक नरेश के साथ विवाह के उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर ले, ''प्रभावती गुप्तवंश की राजदुहिता है जिस कुल का रक्त उनकी नसों में दौड़ रहा है, उसे इतिहास के पन्नों में चिरस्थाई बनाने के लिए क्या उन्हें अपना हठ नहीं छोड़ देना चाहिए ?''[20] इस प्रकार पहले वह संवाद द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। किंतु जब प्रभावती अपने फैसले को नहीं बदलती है तो चन्द्रगुप्त अपना शासकीय राजनैतिक चेहरा दिखाता है। प्रभावती को दूसरे अर्थों में स्पष्ट चेतावनी देता है, जिससे वह टूट जाती है और कालिदास को त्याग देने का फैसला लेती है । अतः चन्द्रगुप्त शासकीय अंदाज में कहता है, ''आज जो आश्रयदाता उदार और कृपालु है, वह कल कठोर और दण्ड विधायक भी हो सकता है।''[21]

अतः निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि राजनीति में हमेशा से यह देखा गया है कि सत्ता विस्तार के लिए कितने ही लोगों की ज़िदगी और भावनाओं का सौदा हो जाता है। जनता को यश और पदोन्नति का निमित्त मात्र माना जाता है। इस प्रकार चन्द्रगुत भी 'सेतुबंध' नाटक में अपनी पुत्री को अपनी सत्ता और यश हेतु उसे उसके प्रेम से अलग कर उसका विवाह वाकाटक युवराज से कर देते हैं। जिससे उसके महत्वाकांक्षी सत्ता विस्तार को एक सफलता प्राप्त हो।

4.2 नायक खलनायक विदूषक

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने इस नाटक का परिवेश भी प्राचीन गुप्तकाल से लिया है। साथ ही इस नाटक की विशेषता भी यही है कि यह आधुनिक मानव के संघर्ष, द्वंद्व, विवशता और व्यक्तित्व की खोज आदि

प्रश्नों को व्यंजित करने में सफल है, " 'नायक खलनायक विदूषक' में आदमी की विवशता, स्वतंत्र व्यक्तित्व का प्रश्न, कलाकार का द्वंद्व और रंगमंच की प्राचीन-आधुनिक प्रदर्शन-पद्धतियों का कुशल उपयोग किया है।"[22]

इस नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने मुख्यतः कपिंजल नामक पात्र के माध्यम से व्यक्ति की चयन स्वतंत्रता, उसकी मनोइच्छा के कुचले जाने जैसी स्थिति को चित्रित किया है। आज के आधुनिक युग में भी परिस्थितियाँ बहुत अधिक परिवर्तित नहीं हुई हैं। सत्ता समाज के विरुद्ध उसकी इच्छा का दमन कर अपनी सत्ता चलाना चाहती है। एक बार चयनित होने के पश्चात् सत्ता जनता की इच्छा का शायद ही ख़याल रखती है, जिसके कारण हम अक्सर सत्ता के विरुद्ध जनता में विरोध और आक्रोश देखते हैं। ठीक उसी प्रकार आज विभिन्न कार्यालयों और संगठनों में भी कपिंजल जैसे पात्र देखे जाते हैं, जिसकी इच्छाओं की उपेक्षा की जाती है, जहाँ उसकी दिशा तय कर दी जाती है या नाट्य भाषा में कहा जाए तो उसका पात्र-चरित्र तय कर दिया जाता है कि उसे किस प्रकार इस दुनिया के रंगमंच पर अभिनय करना है। उसे अपने पात्र चयन की कोई स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। जैसे इस नाटक का पात्र कपिंजल भी एक ही 'विदूषक'का पात्र वर्षों से अभिनीत करते आ रहा होता है और वह अब अपने इस पात्र से ऊब चुका रहता है। एक ही तरह के पात्र अभिनय से उसके नाट्य जीवन और निजी जीवन में भी वह ऊब चुका रहता है। कपिंजल रंग विधा में स्नातक है और प्रारंभ में बेरोजगार रहने के पश्चात् उसे नील-नगर के रंगशाला में अभिनय करने का कार्य मिल जाता है। वक्त के साथ उसका अभिनय लोगों में काफी लोकप्रिय भी होता है, किन्तु उसे लगातार एक ही पात्र अभिनीत करने को दिया जाता है। लगातार अवसरों के नाम पर उसे विदूषक का ही पात्र मिलता है एक अनिच्छित चरित्र अभिनय को बार-बार मिलता है, "वह विवश होता है चुने जाने के लिए। वह स्वयं निर्वाचन नहीं कर पाता है। एक विकल्पहीनता में उसे निर्वाचित होना पड़ता है। उसे अनुकूल अवसर दिया जा रहा यह कहकर, एक प्रतिकूल और अनिच्छित भूमिका मिलता है विदूषक की। बराबर अवसरों के नाम पर उसे विवश किया जाता है विभिन्न नाटकों में बराबर एक ही भूमिका

निभाने के लिए। सभी पात्रों के लिए नई भूमिकाएं रहती हैं, परंतु वह निरंतर एक ही निष्प्राण भूमिका में अपनी आत्मा के विरुद्ध उतरता है।"[23]

कपिंजल अभिनय के माध्यम से विभिन्न चरित्रों को जीना चाहता है, ताकि उसके अपने असल जीवन में भी एक नई स्फूर्ति महसूस हो, वह जीवन के अन्य पक्षों को भी जान सके रंगमंच के माध्यम से जी सके, रंगमंच के माध्यम से वह अपने नाट्य जीवन और असल जीवन में भी जीवंतता और गतिशीलता बनाए रखना चाहता है, किन्तु उसे हर बार अलग तर्कों और माध्यमों से विवश किया जाता है कि वह वही नीरस और रूढ़ नाट्य पात्र को अभिनीत करे, "और अब राज्य के लिए है।...फिर परसों के दिन कहीं का नाट्याचार्य आ जायेगा, तो कला के लिए होगा। ..(आवेश में) यह दुश्चक्र कभी नहीं टूटेगा श्रीमान!"[24] दरअसल आज हम आम आदमी लोकतांत्रिक व्यवस्था में जी तो रहे हैं, किन्तु हम अभिशप्त हैं समझौतावादी बनने के लिए। जैसे कपिंजल, सूत्रधार, पुष्पदंत आदि से हर प्रकार से तर्क करने के बाद भी उसे विदूषक का पात्र ही अभिनीत करने को विवश हो जाता है, "अब यही सोचकर स्वयं को संतोष दो कि भूमिका चुनने का अधिकार हमारा नहीं। और इतना ही क्या कम कि हम मछुआ या कंचुकी नहीं हुए।"[25]

इस नाटक में कुमारभट्ट एक ऐसा पात्र है जो परिस्थियों से संघर्ष नहीं करता, बल्कि वह एक समझौतावादी चरित्र है। वह परिस्थितियों से हार वक्त से समझौता करना सीख लेता है। कपिंजल का विदूषक की भूमिका का विद्रोह करने पर कुमारभट्ट उसे भी समझौता करने को कहता है, साथ ही साथ उसे इसके लिए मना भी लेता है। इस नाटक में कुमारभट्ट के चरित्र का मूल्यांकन करें तो वह समकालीन समाज का प्रतिनिधि पात्र भी प्रतीत होता है। जहाँ वह आधुनिक मानव के इस सच को जानता है कि आज की इस दुनिया में वास्तविकता के धरातल पर रहकर ही जिंदा रहा जा सकता है। जहाँ ज़िंदगी की एक सच्चाई यह भी है कि आप या तो संघर्ष करो या तो परिस्थितियों से समझौता कर लो, तभी आपका अस्तित्व संभव है, "इच्छाएँ जीवन की नियामक नहीं हैं कपिंजल। हमारे मनचाहे जीवन का मानचित्र पूर्व की ओर जाता है और वास्तविक जीवन परिचय की ओर।"[26]

इस प्रकार कपिंजल और कुमारभट्ट दोनों ही आधुनिक समाज में आज के उस मानव को चित्रित करते हैं, जहाँ एक विद्रोही और संघर्षशील है पर अंततःआत्मबलिदानी, वहीं दूसरा भीतर से टूटा हुआ समझौतावादी और आत्मसमर्पित पराजित, "एक हमारी विद्रोही चेतना का बलिदानी आयाम है और दूसरा आत्मसमर्पण, पराजय-स्वीकृति और समझौते की दिशा है।"[27]

इसके अतिरिक्त सुरेन्द्र वर्मा ने आज रंगमंच के अस्तित्व पर मंडरा रहे खतरे को भी उजागर किया है। रंगशाला की शोभा उनके दर्शकों से ही बढ़ती है और जिस प्रकार आज मनोरंजन का आधुनिक माध्यम दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहा है वैसे-वैसे लोगों का नाटक और रंगमंच के प्रति रुचि कम होती जा रही है। आज नाटक और रंगमंच की दुनिया सिमटती जा रही है। इसके दर्शक अब कुछ एक ख़ास वर्ग के होते हैं, जिनके अन्दर कला आज भी जिंदा है। जो अपनी परंपरा और संस्कृति से आज भी जुड़े हैं और नाटक एवं रंगमंच की इस दुनिया को जिंदा रखना चाहते हैं। सुरेन्द्र वर्मा रंगमंच के इस अस्तित्व संकट को इस नाटक में इन शब्दों में प्रकट करते हैं,

"सूत्रधार : (संकेत और मंद स्मित सहित) तनिक देखो तो! रंगपीठ पर धूल की फैली रंगोली सजी है!

स्थापक : हर जगह यही हाल है महोदय ! महिलाओं के वेशभूषा कक्ष में तो चिड़िया ने घोंसला तक बना लिया है। (दर्शकों की ओर बढ़ आता है। ऊँचे स्वर में) पारिपार्श्विक !

सूत्रधार : (आगे मंच- सीमा तक आते हुए , सूंघता सा) एक मास तक बंद रहने से कैसी गंध भर गई है.. पारिपार्श्विक !"[28]

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सुरेन्द्र वर्मा का यह नाटक 'नायक खलनायक विदूषक' ऐतिहासिक मिथकीय कथा पर आधारित नाट्य रचना तो है, किन्तु यह आज के समकालीन समाज में मानव ज़िंदगी के उस पक्ष से हमें परिचित भी करवाता है, जहाँ मनुष्य के पास दो रास्ते रहते हैं या तो वह जीवन में संघर्ष करे अथवा आत्मसमर्पण कर दे। व्यवस्था से संघर्ष करने पर या तो अंत तक

लड़े और व्यवस्था में परिवर्तन लाए या हालातों से हार कर अंत में समझौता स्वीकार कर ले। जिस प्रकार कपिंजल इस नाटक में अंततः परिस्थिति के हाथों और कुमारभट्ट के समझाने पर समझौता करने के लिए विवश हो जाता है, क्योंकि उसके लिए दूसरा कोई और मार्ग नहीं बचता था। यदि वह संघर्ष करता और अन्त तक विद्रोह करता तब उसे शायद राजकीय रंगशाला से निकाल दिया जाता और मुमकिन है कि उसे कोई राजकीय दंड भी दिया जाता, जैसा कि उसे चेतावनी दी गई थी। इसके अलावा भारतीय रंगमंच की इस महान परंपरा का अस्तित्व किस प्रकार धूल की चादर से ढकता जा रहा है, इस ओर भी हमारा ध्यान केन्द्रित किया गया है। इस दृष्टि से सुरेन्द्र वर्मा के इस नाटक में आधुनिक भाव बोध है जो मानव समाज के हालातों और उन हालातों से अंततः समझौता करते मनुष्य को चित्रित करते हैं, जो प्रासंगिक हैं।

कपिंजल-

'नायक खलनायक विदूषक' का पात्र कपिंजल एक आधुनिक समकालीन व्यक्ति है जो नाट्य जगत से जुड़ा हुआ है। वर्षों से वह एक ही पात्र विदूषक के पात्र का अभिनय करता रहता है। किन्तु उसकी यह इच्छा रहती है कि इस पात्र चरित्र के अतिरिक्त अन्य पात्र-चरित्रों को अभिनीत करने का उसे अवसर प्राप्त हो। सुरेन्द्र वर्मा ने कपिंजल के माध्यम से समकालीन मनुष्य की ऊब को व्यंजित किया है। यह ऊब एक ही तरह की जीवन शैली को वर्षों तक जीने की ऊब है। इस भौतिकवादी आधुनिक समकालीन समाज में नीरस जीवन शैली के प्रति एक साधारण मनुष्य की ऊब है। कपिंजल नदी की उस धारा की तरह बहना चाहता है जो चलायमान होती है। जिसका जल स्वच्छ होता है। जिसकी कलकलाहट में एक ताजगी होती है। वह उस कूप या नदी के ठहरे जल की तरह जीवन नहीं जीना चाहता, जिसमें एक बहाव या ताजगी न हो। कपिंजल कहता है, ''इसकी भूमिका ऐसा मोदक है, जिसे मैंने सैकड़ों बार निगला है, लेकिन जो बार-बार मेरे सामने आ जाता है, वह रूप, वही आकर, वही गंध, वही स्वाद। क्योंकि ये बिल्कुल स्थिर चरित्र हैं।"[29] अतः कुमार भट्ट को इस पात्र का पुनः अभिनय करने से मना करता है। किंतु परिस्थितियाँ उसके विरोध को कमजोर कर देती हैं। उसे

धर्म, कर्म, कला, भाग्य, नियति आदि बताकर उसके विचारों पर विराम लगा दिया जाता है। कुमार भट्ट उसे अपने तर्कों से पराजित कर उसे पुनः विदूषक का पात्र अभिनय करने के लिए तैयार कर लेता है। कपिंजल की स्थिति ऐसी होती है, जिसमें वह अपनी भावनाओं का बलिदान कर देता है या यूँ कहें कि वह आत्मपराजय स्वीकार कर लेता है। डॉ. चन्द्रशेखर के शब्दों में कहें तो, ''इस बिंदु पर समकालीन जीवन की त्रासदी गहराने लगती है। हम यह निर्णय भी नहीं कर पाते हैं कि यह कपिंजल का बलिदान है या आत्मपराजय। पर वह पुनः दोनों के बीच रहने के लिए दण्डित हुआ है।''[30]

इस प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने कपिंजल के माध्यम से आज के समकालीन आधुनिक मानव के एकरस जीवन को इस नाटक में दिखाया है। जिसका इस एकरसता के कारण जीवन ऊब से भर चुका है, वह रंगमंच पर विभिन्न पात्रों के माध्यम से जीवन को विभिन्न दृष्टि से अनुभव करना चाहता है। किंतु सुरेन्द्र वर्मा ने यह दिखाया है कि आज वर्तमान में परिस्थितियाँ से हमें इस प्रकार विवश कर देती हैं जैसे कपिंजल होता है कि हम चाहकर भी उस ऊब से, उस जीवन शैली से बाहर नहीं आ पाते हैं। भाग्य, नीति, धर्म, भय और डर से उसी ऊब और जीवन शैली को अपनाए रह जाते हैं या हम समझौतावादी बन जाते हैं।

4.3 द्रौपदी-

सुरेन्द्र वर्मा के नाट्य संग्रह 'तीन नाटक' का तीसरा नाटक 'द्रौपदी' है। इस नाटक से पूर्व दो नाटकों 'सेतुबंध' और 'नायक खलनायक विदूषक' का अर्थ बोध तो आधुनिक है, किन्तु देशकाल और पात्र योजना ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में की गई है। लेकिन 'द्रौपदी' नाटक का साक्षात्कार सीधा-सीधा आधुनिक समकालीन मानवीय जीवन के कटु यथार्थ से होता है। जहाँ नाटककार ने किसी भी प्रकार से ऐतिहासिकता का सहारा नहीं लिया है। 'द्रौपदी' नाटक आधुनिक समाज में खंडित व्यक्तित्व वाले मनुष्यों का चित्रण करता है, साथ ही उनकी जीवन विसंगतियों के मूल कारणों को उजागर करता है, "मानवीय संबंधों के बिखरने-टूटने और साथ ही बदलते नैतिक मूल्यों और काम संबंधों

को केंद्र में रखकर सम्पूर्ण नाटक लिखा गया है। समकालीन परिस्थितियों के दवाब से व्यक्ति किस प्रकार टुकड़ों में बंट जाता है और एक साथ कई जिंदगियाँ जीता है और इसीलिए कुंठित होता है। इस सत्य को 'द्रौपदी' में निःसंकोच प्रस्तुत किया गया है।"[31]

नाटक में मुख्यतः एक दाम्पत्य पात्र है- सुरेखा और मनमोहन। सुरेखा नाटक में आधुनिक द्रौपदी की प्रतीकात्मक पात्र है। जिस प्रकार द्रौपदी के पाँच पति थे, उसी प्रकार सुरेखा का पति भी पाँच व्यक्तित्वों वाला एक इंसान है। सुरेखा अपने पति और उसके पाँच व्यक्तित्वों का निरंतर ही अनुभव करती है, "जैसे अब वह आदमी एक नहीं, एक से ज्यादा हैं ? उसके हिस्से हो गये हैं अलग-अलग और कभी एक से तुम्हारा सामना है और कभी दूसरे से।"[32] सुरेखा का पति मनमोहन है जो हमेशा ही घर में शान्ति से रहता था। जिसके साथ उसका दाम्पत्य जीवन बहुत ही खुशहाल था। पर अब सब कुछ बदल गया है, सुरेखा का अब अपना परिवार खंडित हो चुका है, एक ही परिवार के लोग अपनी ज़िंदगी अपने ढंग से जीते हैं, कोई भी किसी बात को लेकर एक मत नहीं है,

"मनमोहन : (कुछ रुककर, इधर-उधर देखते हुए) कभी-कभी मुझे लगता है कि जैसे यह घर..

सुरेखा : (जैसे ध्यान बांटने को) सुनो।

मनमोहन : हूँ।

सुरेखा : बहुत दिनों से हम लोग बाहर नहीं निकले। कल कहीं चलो न!

मनमोहन ?

सुरेखा : कहीं भी-ओखला, क़ुतुब, सूरजकुंड-न हो तो यहीं चलो- वृद्धाजयन्ति पार्क-

मनमोहन : कौन-कौन ?

सुरेखा : कौन-कौन क्या मतलब ? हम सब !

मनमोहन : हम सब कौन ?

सुरेखा : क्या हो गया है तुम्हें ? हम चारों।

मनमोहन : (फीकी मुस्कान से) क्यों झूठमूठ अपने को बहलाती हो ? वे दोनों जायेंगे हमारे साथ ? कोई न कोई जरूरी काम निकल आयेगा उन्हें। एक के दोस्त की सालगिरह ! दूसरे की एक्स्ट्रा क्लास!"[33]

आज के समाज में पारिवारिक एकता, मूल्य कैसे टूटते जा रहें हैं। नाटक का यह दृश्य एक सटीक उदाहरण है। हमारी भारतीय परंपरा पारिवारिक मूल्य 'हम' के अर्थ में आस्था रखती थी, वहीं आज हम एक-दूसरे से कट कर 'मैं' शब्दावली का इस्तेमाल करने लगे हैं। इस सन्दर्भ में सुरेखा और मनमोहन का परिवार आज के खंडित परिवार को संबोधित करता है।

सुरेखा का पति मनमोहन जिसके व्यक्तित्व के पाँच रूप हैं। पहला मनमोहन जिससे उसकी शादी हुई थी और जिसके साथ एक समय तक वह बहुत ही खुश थी, पर मनमोहन के अतिरिक्त चार और रूप हैं। सफ़ेद, पीले, लाल और काले नकाबधारी वाला मनमोहन। सफ़ेद नकाबधारी वाला मनमोहन का वह दूसरा रूप है, जो उसकी अंतरात्मा है, जो सदा मनमोहन को सुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है और हमेशा ही गलत कार्यों को करने से रोकता है, साथ ही अन्य नकाबधारियों के गलत कार्यो के करने पर शर्मिंदा भी होता है। सुरेन्द्र वर्मा ने इस नाटक में प्रतीकों के माध्यम से हमें यह बताने का प्रयत्न किया है कि आज हम आधुनिकता के बाह्य रूपों के पीछे अर्थात् भौतिक सुखों के पीछे इस तरह भाग रहे हैं कि हमारे अन्दर कई और शख्सियतों ने जन्म ले लिया है। हमारी आत्मा हमेशा गलत कार्यों को करने से हमें रोकती है, किन्तु बहुत कम ही ऐसा अवसर होता है जब हम अपनी आत्मा की सुनते हैं। हमारी आत्मा का प्रतिनिधित्व मनमोहन का सफ़ेद नकाबधारी रूप करता है। मनमोहन का तीसरा व्यक्तित्व पीला नकाबधारी है, जो अपने पद-प्रतिष्ठा में पदोन्नति हेतु दिन रात परेशान रहता है। जिसके लिए वह अंतहीन दौड़ लगाता रहता है। जहाँ उसे कार्यालय में दिए गए कार्य लक्ष्य को नहीं करने पर अपने से उच्च अधिकारी की प्रताड़ना भी झेलनी पड़ती है।

मनमोहन का यह पीला नकाबधारी रूप भी आज के ही मनुष्य का प्रतिनिधि रूप है, जिसके अन्दर पद, प्रतिष्ठा और अपना कद ऊँचा करने के लिए दिन-रात मेहनत करता रहता, भागता रहता है। वह इंसान से मशीन बन जाता है। फिर भी उसके अन्दर की चाहत और पाने की भूख खत्म नहीं होती है। यही आज के आधुनिक मनुष्य की सच्चाई बन चुकी है। इंसान आज थोड़े में खुश नहीं है, जैसे मनमोहन का पीला नकाबधारी वाला रूप। मनमोहन का चौथा व्यक्तित्व लाल नकाबधारी वाला है। जो कामुक है, विवाह के पश्चात् भी परस्त्रियों से संबंध स्थापित करता है। यौनाचार में वह अक्सर लिप्त रहता है। अपनी पत्नी सुरेखा के प्रति उसका आकर्षण कम हो चुका है और बाहर अंजना, रंजन और वंदना से शारीरिक संबंध स्थापित करता है। मनमोहन का लाल नकाबधारी भी आज के मनुष्य का ही प्रतीक रूप है। जो काम में आसक्त है। आज के समाज का एक कटु सत्य यह है कि आज दाम्पत्य जीवन टूट रहा है। पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति ईमानदारी और भरोसा कायम नहीं रख पा रहे हैं। मानव अपनी मनुष्यता के लक्षणों को छोड़ पशु बनता जा रहा है। जहाँ न समाज होता है, न सामाजिक संरचना और न उनकी नियमावली। मनमोहन का पाँचवां रूप काला नकाबधारी व्यक्तित्व वाला है। जो भौतिक सुखों और उपलब्धियों के पीछे बेतहाशा भागता रहता है। यहाँ तक कि वह घर भी छोड़ देता है। काले नकाबधारी का हमेशा ही सफ़ेद नकाबधारी से द्वंद्व रहता है, क्योंकि सफेद नकाबधारी हमेशा ही इस काले नकाबधारी के रास्ते में आ जाता है। यहाँ भी नाटककार हमारे मन और आत्मा को प्रतीक रूप में चत्रित करता है। काला नकाबधारी हमारे मन का प्रतिनिधित्व कर रहा है, जो चंचल है, हमें भटकाता है l सफेद नकाबधारी हमारी आत्मा का प्रतीक है, जो सही रास्ते पर चलने को प्रेरित करता है और हमेशा गलत करने से पहले हमें रोकता है।

इस प्रकार मनमोहन के यह पाँचों व्यक्तित्व आज के मनुष्य के अन्दर ही हैं, जो समय-समय पर निकल कर बाहर आते रहते हैं, साथ ही अपनी प्रवृतियों के अनुसार समाज में व्यवहार करते हैं।

सुरेखा और मनमोहन के अतिरिक्त अलका और मंदा भी इस नाटक के ऐसे नाट्य पात्र हैं, जिनके आधुनिक जीवन के अजनबीपन, अधूरेपन और खोये हुए व्यक्तित्व को हम देख सकते हैं। उनके बीच के संवाद को हम सुनें तो अनायास ही हमें आज अजनबी होते मनुष्य का बोध हो जाएगा। सुरेखा और अलका के बीच के वार्तालाप से इस बात की पुष्टि होती है। विवाह के वर्षों बाद भी एक अपने पति को तो दूसरी अपने प्रेमी को सही से नहीं जान पाई है,

" सुरेखा : बात कहाँ तक पहुँची ?

अलका : क्या मतलब ?

सुरेखा : कुछ शादी-वादी की बात की उसने ?

अलका : नहीं।

सुरेखा : क्यों ?

अलका : अब ये मैं कैसे जान सकती हूँ ? उसके दिल के भीतर घुसने का तो कोई रास्ता है नहीं ?"[34]

जिस प्रकार अलका और सुरेखा अपने पति और प्रेमी के साथ रहते हुए भी एक-दूसरे को नहीं समझ पाई हैं, उसी प्रकार आज का मनुष्य एक अजनबियत से गुजर रहा है। एक परिवार, एक मौहल्ले में रहते हुए भी, आज हर दूसरा व्यक्ति एक-दूसरे से अनजान से रहते हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सुरेन्द्र वर्मा का 'द्रौपदी' नाटक आज के आधुनिक परिवार और समाज का वह आईना है, जिसमें हम एक ही इंसान में कई बदलते शख्सियतों को देख सकते हैं। जहाँ पारिवारिक संबंधों में कोई मधुरता या एकरसता नहीं है। हर कोई एक-दूसरे से कट कर रहने में खुद को सहज महसूस करता है। रिश्तों में एक अजनबीपन का बोध है। व्यक्ति, परिवार और समाज खंडित होते जा रहे हैं। अपने परंपरागत मूल्यों को छोड़ व्यक्ति भौतिक सुखों के पीछे भाग रहा है। जैसा कि इस नाटक की कथावस्तु में हम देख सकते हैं। इन परिवर्तित होते मानवीय

मूल्यों को इस नाटक के माध्यम से हम सबके समक्ष प्रस्तुत करना ही नाटककार का मुख्य ध्येय है। भारतीय संदर्भो में बात करें तो भरोसा, आस्था, भावनाएँ इन सब परंपरागत नीवों पर ही खड़ा हुआ है हमारा समाज। पर हम आज अपने परंपरागत मूल्यों को त्याग कर अपने आस-पास एक ऐसी दुनिया की रचना कर रहे हैं, जहाँ काम, लालच, घृणा और ऐसी प्रतिस्पर्धा है जो मानव जीवन को विकास के आरोह मार्ग पर नहीं, बल्कि अवरोह मार्ग पर लेकर जाएगा। इस दृष्टि से सुरेन्द्र वर्मा का यह 'द्रौपदी' नाटक एक सफल नाटक कहा जा सकता है, जो सीधा हमें आज के समकालीन समाज के विकृत होते जा रहे आचरण को दिखाता है।

सुरेखा-

सुरेन्द्र वर्मा के नाटक 'द्रौपदी' की मुख्य स्त्री पात्र सुरेखा, नारी के दो रूपों में दिखती है। एक ओर तो वह परंपरागत दिखती है, तो दूसरे रूप में आधुनिकता का दर्शन उसके चरित्र में दिखता है। ऐसे में उसके चरित्र को लेकर एक आखिरी निर्णय लेना थोड़ा कठिन कार्य है। मूलत: वह उच्च-मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो व्यावहारिक धरातल पर दिखती है। वह कहीं परिस्थितियों के अनुरूप खुद को किसी मौके पर परंपरागत भारतीय नारी साबित करती है, तो कहीं आधुनिक नारी। इसका परिचय हमें उसके ही शब्दों में मिलता है, ''सिलाई-कढ़ाई में मैं बहुत कुशल हूँ। समय मेरा काटे नहीं कटता था, इसलिए प्रारंभ तो हुआ था मन बहलाने को, पर धीरे-धीरे वही शौक बनता गया। अब मेरे पास एक से एक सुंदर नमूने हैं, इच्छा है कि कभी इनकी प्रदर्शनी करूँ और संस्कृति के विकास में अपना योगदान दूँ।''[35] इस प्रसंग से सुरेखा के दोनों ही रूपों का हमें भान होता है। नाटक के प्रारंभ में सुरेखा एक घरेलू भारतीय परंपरा में आस्थावान स्त्री के रूप में हमें दिखती है, जो अपने घर को कुशलतापूर्वक चला रही होती है। जो सभी पारिवारिक सदस्यों का पूरी तरह से ख्याल रखती है,

''सुरेखा : अलका नील (नाश्ता लग गया)

मनमोहन : अच्छा।

सुरेखा : पहले क्या लोगे ? टोस्ट या हलवा ? मनमोहन : कुछ भी

सुरेखा : चाय, काफी या दूध ?''[36]

इस प्रकार सुरेखा एक भारतीय गृहणी की तरह दिखती है, जिसकी आस्था परंपरागत जीवन निर्वाह में दिखती है। आज भी भारतीय समाज में ऐसी स्त्रियाँ मिल जाती हैं, जो अपने पति के विरुद्ध कुछ नहीं बोलती हैं। अन्याय, अत्याचार, उपेक्षा सभी को अपनी नियति समझकर सहन कर लेती हैं। कई बार तो पति का संबंध दूसरी स्त्रियों के साथ होने पर भी उसका विरोध नहीं करती हैं और वह यह बात अपने अंदर रखे रहती हैं। सुरेखा भी इस नाटक में इन परिस्थितियों से गुजरती है। अपने पति मनमोहन के चरित्रों का पता होते हुए भी कुछ नहीं कहती है,

''सुरेखा: यही कि जैसे अब वो आदमी एक नहीं, एक से ज्यादा है।

मंदा- (विचार मग्न) एक नहीं, एक से ज्यादा है।

सुरेखाः जैसे उसके हिस्से हो गए हैं अलग-अलग और कभी एक से तुम्हारा सामना होता है और कभी दूसरे से.... जैसे कभी वो दफ्तर में डूबा रहता है, कभी घर में, कभी ऊपर-ऊपर से मुझे छू के ही उसका मन भर जाता है और कभी वो एक-एक बोटी नोंच डालता है मेरी।

मंदा : ऐसा तो मुझे भी लगता है अक्सर।

सुरेखा : और कभी उसके बदन से दूसरी औरत की बू आती है।''[37]

भारतीय परंपरा में आस्था रखने वाली भारतीय स्त्रियाँ अक्सर इस तरह के घरेलू अन्याय और कष्टों को नियति मान लेती हैं। सुरेखा भी काफी समय से नियति मानकर सहती रहती है। पर वक्त के साथ सुरेखा के चरित्र में परिवर्तन आ जाता है, वह अपने परंपरावादी चरित्र को त्याग देती है क्योंकि उसके घरेलू हालात दिन-प्रतिदिन बिगड़ते जाते हैं। अतः अपने घर को सुचारू और व्यवस्थित करने के

लिए वह पूरी तरह आधुनिकता के सांचे में ढ़ल जाती है। जिस आधुनिकता के मानदंड़ों को समाज ने मान लिया है। वह अपनी बेटी से उसके प्रेम संबंधों के बारे में भी पूछती है। इस संबंध में किसी भी प्रकार की झिझक नहीं रखती है। वह अलका से पूछती है- बात कहाँ तक पहुँची ? कुछ शादी-वादी की बात की उसने ?

"सुरेखा : क्या रखा है, इतनी पढ़ाई में ? घर का इतना बड़ा काम है, वही क्यों नहीं संभालती ? और एक बार साथ छूट गया तो फिर मुश्किल से होता है। उसे और मिल जाएगा।

अलका : तो क्या मुझे नहीं मिल सकता ?

सुरेखा : ढंग से मामले को आगे बढ़ाने की जरूरत है। थोड़ी देर चांद-सितारों की बातें करके उसे जज्बाती बनाकर राजी-खुशी देती जा उसे जो कुछ वो चाहता है।"[38]

इस प्रकार सुरेखा को वक्त ने कैसा समझोतावादी नारी में बदलकर रख दिया इस प्रसंग में देखा जा सकता है कि कैसे सुरेखा स्वयं माँ होकर अपनी बेटी को प्रेम संबंधी छल प्रपंच सिखा रही है, ताकि उसकी बेटी को भविष्य के सारे भौतिक सुख उसके प्रेमी के माध्यम से प्राप्त हो सके। अतः 'द्रौपदी' नाटक में पात्र के रूप में सुरेखा का विश्लेषण करें तो परंपरावादी और आधुनिक दोनों ही स्त्रियों के रूप उसमें देखे जा सकते हैं। जहाँ एक ओर नाटक के प्रारंभ में सुरेखा एक घरेलू महिला के रूप में घर के सदस्यों का ध्यान रखती है, वहीं नाटक के मध्य में आते-आते वह एक ऐसी आधुनिक स्त्री का रूप धारण कर लेती है जो अपने कार्यस्थल पर पुरुषों से घुलमिल कर काम करती है। साथ ही पदोन्नति के लिए अक्सर अपने घर बॉस को भी बुलाती है। साथ ही साथ प्रेम और काम संबंधों पर बेटी से खुलकर बातचीत करती है। वह जीवन में सफल होने हेतु ऐसे गलत सुझाव देती है, जिसमें वह सदा सुखी रह सकती है। जिसमें वह सामाजिक और पारिवारिक हदों से ऊपर उठ कर सिर्फ अपने फायदे की बात सोचने के लिए प्रेरित करती है।

मनमोहन-

मनमोहन 'द्रौपदी' नाटक में एक ऐसा पात्र है जो आधुनिक महानगरीय जीवन और सभ्यता में अकेला, विखंडित और तनावपूर्ण जीवन जीने वाला व्यक्ति है। उसके पाँच खण्डित रूप इस नाटक में हैं। उसका पहला रूप मनमोहन का है, जो सुरेखा का पति है। सुरेखा उसका परिचय देते हुए कहती है, ''मेरा एक पति है। नाम है उनका मनमोहन। निकट के लोगों ने 'मनि' कर दिया है। आप लोग भी चाहें तो कह सकते हैं, मुझे कोई आपत्ति नहीं।''[39] लेकिन मनमोहन का सिर्फ यही रूप नहीं दूसरे और चार रूपें भी हैं। जो मनमोहन के चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनमोहन का सफेद-नकाबपोश उसके स्वच्छ, सादगी एवं विचारवान व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। वह मनमोहन की अंतरात्मा की आवाज है। जो उसे सभी बुरे कर्मों से बचाना चाहती है, उसे आगाह करती है जब भी वह गलत रास्ते की ओर बढ़ता है। अगर मनमोहन किसी बुरे कर्म में लिप्त होता है तो उसे कष्ट होता है। सफेद-नकाबधारी उसे सुधारना चाहता है। वह मनमोहन को बताता है, ''मैं तो हमेशा तुम्हारे साथ रहता हूँ। तुम्हारा सबसे पुराना साथी तो मैं ही हूँ। तुम्हारा सगा भाई सच्चा दोस्त।''[40] मनमोहन का तीसरा रूप है पीले नकाबपोश का जो महानगरीय जीवन में भौतिक सुखों के पीछे भागता-फिरता है। वह इस भौतिक सुख प्राप्ति के दौर में सबसे आगे बढ़ना चाहता है, इसलिए भागते-दौड़ते रहना, बेचैन रहना उसका स्वभाव और प्रकृति ही बन जाती है। लेकिन इस अंधी दौड़ में वह सबसे पीछे रह जाता है, जहाँ उसे ज़िल्लत की ज़िदगी ही मिलती है। चौथा रूप उसका है लाल नकाबधारी का जो केवल काम भावना से ग्रस्त है। जो अनैतिक संबंधों के पीछे दीवाना है। जिसका लक्ष्य केवल यौन सुख प्राप्त करना है। वह स्त्रियों की मजबूरी का फायदा उठाता है। वह अपनी पत्नी सुरेखा के साथ विश्वासघात करता है। उसे अपनी पत्नी में कोई रुचि नहीं है। वह सप्ताह की आखिरी चार रातें रंजना, अंजना, वंदना के साथ गुजारता है। पाँचवां रूप मनमोहन का काले नकाबधारी का है, जो बुरी आत्मा का प्रतीक है। जिसके अंदर बस राक्षसी प्रवृत्ति उभरती रहती है। वह सफेद नकाबपोश को मार देना चाहता है। वह सदाचारी विचारों का अंत कर देना चाहता है।

वह समाज में बुरे लोगों का प्रतिनिधि पात्र है, जिसके लिए कोई नियम, कानून, सही-गलत मतलब नहीं रखता है। उसके जीवन का उद्देश्य ही शोषण एवं दमन करना है। इस प्रकार मनमोहन और उसके बाकी नकाबपोशी रूप आधुनिक महानगरीय जीवन में खण्डित व्यक्तित्व वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो कई स्तरों पर जीवन यापन करने के लिए बाध्य एवं अभिशप्त हैं।

4.4 सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में स्त्री-पुरुष के काम-संबंधों का मनोवैज्ञानिक धरातल पर अध्ययन किया गया है। किंतु सुरेन्द्र वर्मा ने अपने अन्य नाटकों की तरह इसमें भी मिथकीय, ऐतिहासिक कथानक लेकर नाटक का संयोजन किया है। कथानक का केंद्रीय विषय मल्ल देश के राजा की नपुसंकता तथा शीलवती के संतान प्राप्ति न होने पर उठे सवाल से संबंधित है। राज्य को उसका उत्तराधिकारी प्राप्त हो जाए, इसी संदर्भ में अमात्य परिषद (सभा जन) राजा ओक्काक तथा रानी शीलवती को राज्य के परंपरागत नियमानुसार नियोग प्रथा को स्वीकार करने के लिए विवश करते हैं, ''महामात्य यह पग उतना क्रांतिकारी नहीं, जितना कि आप समझ रहे हैं। आजकल भी नियोग की प्रथा है। दो वर्ष पहले कुंडिनपुर और तीन वर्ष पहले अवन्ती राज्यों में इसी प्रकार उत्तराधिकारी प्राप्त किया गया है। महाबलाधिकृत : इन दोनों राज्यों की महिषियां गर्भ प्राप्ति के लिए धर्मनटी बनकर बाहर गई थी। राज्य पुरोहित : इतिहास साक्षी है कि हमारे देश में प्राचीन काल से ही यह रास्ता अपनाया गया है। एक-एक पांडव का जन्म नियोग द्वारा ही हुआ था। उनमें कोई भी अपने पिता की संतान नहीं था। महामात्य : जब तक आदमी-आदमी है यह प्रथा जीवित रहेगी।''[41]

शीलवती आमात्य परिषद के सभी तर्कों को सुनने के बाद वो नियोग को स्वीकार करती है और अपने पूर्व प्रेमी प्रतोष को खुद को समर्पित करती है, "आर्य प्रतोष के सहवास-संभोग की एक रात उसमें बाह्याभ्यंतरिक व्यक्तित्व में परिवर्तन करती है। वह एक रात में रविजन्य उन्माद, चापल्य, हर्ष,

आवेग, चांचल्य, उष्मा, औत्सुक्य और रोमांच आदि मनोवैज्ञानिक संवेदनाओं की अनुभूति कर लेती है।''[42] संवेदनाओं की नई अनुभूति जिसका आधार शीलवती के लिए मनोवैज्ञानिक रहता है, उसके पूरे विचारों में एक नवीन परिवर्तन ला देती है। यूं तो इस परंपरा का जिक्र हमारी पौराणिक कथाओं में मिलता है, किंतु सुरेन्द्र वर्मा ने इसे आधुनिक संदर्भ में नहीं, मन की अदीप्त अनुभूति को शब्दबद्ध करते हुए आधुनिक विचारों को प्रस्तुत किया है, ''यह हिन्दी में अकेला नाटक है, जो वर्जनाओं, पुराने मूल्यों, सामाजिक निषेधों और पति-पत्नी के रिश्ते को लेकर बनी हुई अत्यंत नैतिक पवित्रा तस्वीर को तोड़ता है, बिना किसी कुंठा में या अपराध बोध के।''[43]

सुरेन्द्र वर्मा ने इस नाट्य कृति के माध्यम से आज के इस आधुनिक युग में सुख के पीछे बेतहासा भागते दौड़ते व्यक्ति के भटकाव को दिखाया है। शीलवती विवाह से पूर्व व्यक्तिगत सुखमय जीवन के लिए ओक्काक को पति के रूप में स्वीकार तो कर लेती है, किन्तु बाद में उससे जीवन में शारीरिक सुख न मिलने पर अपने प्रेमी प्रतोष का बार-बार नियोग के काल में वरन करती है, जो आधुनिक मानव की अस्थिरता को दर्शाता है, ''मेरी पूरी सहानुभूति है तुम्हारे साथ, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि जब आत्मसंतोष की अंधी दौड़ ही व्यक्तिगत सुख की खोज... तो जीवन बहुत जटिल होता है और उसकी मांगें भी उतनी ही उलझी हुई, पूर्ति के लिए एक से अधिक व्यक्ति चाहिए... किसी से समाज में स्थान, किसी से भौतिक सुविधाएँ, किसी से भावना की तृप्ति, किसी से शरीर का सुख।''[44] इस प्रसंग के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा अपनी भारतीय परंपरा के विरुद्ध पात्रों या परिस्थितियों का सृजन नहीं करते, बल्कि एक ही व्यक्ति के दोनों रूप और परिस्थितियों का चित्रण करते हैं। जहाँ पहले शीलवती अपने व्यक्तिगत सुख का त्याग करती है, वहीं फिर वह भौतिक सुख प्राप्त करने के लिए उसे साधन बनाती है। इस प्रकार इस नाटक में शीलवती परिस्थितियों के अधीन एक आर्दशवादी नारी के स्वरूप में होती है। किंतु बाद के कथानक में नियोग के पश्चात् उसे इस बात का एहसास होता है कि नारी की सार्थकता मातृत्व मात्र में नहीं है। जिससे हमें उसके आधुनिक विद्रोही स्वभाव का परिचय मिलता है, ''केवल नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं मानना, उसके विद्रोही तेवर से

परिचय करवाता है, वहीं वैधानिक चाल में से निकलने की वैधानिक चाल उसमें आधुनिक होने के प्रमाण हैं। अब वह केवल अपने पति के उपचार की 'जड़ी-बूटी' नहीं है, बल्कि हालात में ढली हुई एक आधुनिक नारी बन जाती है। जिसका विद्रोहिणी स्वरूप प्रखर होता है।''[45] इस नाटक के माध्यम से एक और जिस समकालीन समस्या को उठाया गया है वह है शासकीय व्यवस्था में नौकरशाही का स्वरूप। आज राजीनीति का स्वरूप एवं उसकी संरचना ऐसी होती जा रही है, जिसमें वह व्यक्ति के निजी जीवन में भी हस्तक्षेप करती जा रही है। अपने सत्तातंत्र को जीवंत रखने और चलाने के लिए व्यक्ति को एक शतरंज के मुहरे के समान इस्तेमाल किया जाता है। जहां उसकी निजता छिन जाती है। जहाँ वह एक माध्यम बनकर रह जाता है। उदाहरण स्वरूप इस नाटक में भी शीलवती के इच्छा के विरुद्ध, उसे राजसत्ता तथा राजकीय परंपरा की दुहाई दी जाती है। जिसे शीलवती चाहकर भी नकार नहीं पाती है। नियोग की प्रथा को जहाँ खुद स्वीकार करती है, वहीं अपने पति ओक्काक को भी इसके लिए विवश करती है, ताकि इस प्रस्ताव को वह स्वीकार कर ले। राज्य में उत्तराधिकारी के प्राप्त इस लक्ष्य हेतु शक्तिशाली अमात्यपरिषद सदैव अपने फैसले लेता है। जहाँ ओक्काक चाहे या न चाहे। उसकी विवशता यह है कि उसे नियोग के लिए शीलवती को मंजूरी देनी ही पड़ती है। ओक्काक मात्र इस राजनीति के हाथों की कठपुतली बनकर रह जाता है,

''राजपुरोहित: महाराज... अब जो मैं कहूँ, उसको दुहराएँ, राजमहिषी शीलवती। मैं मल्लराज का शासक और आपका पति ओक्काक, आमात्यपरिषद के इस निर्णय से पूरी तरह सहमत हूँ कि आपको गर्भसिद्धि के लिए तीन अवसर दिए जाएँ। यह पहले अवसर की बेला है।.... कहिए महाराज!

ओक्काक : हाँ हाँ, ठीक है।

राजपुरोहित : (ओक्काक से) मैं (शीलवती की ओर संकेत सहित) आपको आज की रात के लिए सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, अर्थात् चुनने का अधिकार देता हूँ।

ओक्काक : अधिकार देता हूँ।

राजपुरोहित : कृपया पूरा वाक्य कह दीजिए।"[46]

निष्कर्ष स्वरूप हम इस नाटक में देख सकते हैं कि कैसे ऐतिहासिक परंपरागत आधार को माध्यम बनाकर नाटककार सुरेन्द्र वर्मा आधुनिक समाज में असंगत परंपराओं, मूल्यों, आर्दशों तथा नैतिक मान्यताओं पर प्रहार हेतु 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' जैसे नाटक की रचना करते हैं। शीलवती के माध्यम से स्त्री के उस रूप से भी रूबरू करवाते हैं, जहाँ शीलवती अपनी परंपरावादी देवी की छवि से निकल जाती है l समाज द्वारा निर्मित मर्यादाओं को तोड़ आधुनिक समाज की स्त्री की भांति भोगवादी रूप में आ जाती है, साथ ही साथ राजनीति का दायरा कैसे दिन-प्रतिदिन व्यक्ति के निजी जीवन तक को अंदर तक प्रभावित कर दे रहा है। इस प्रसंग को भी नाटक के माध्यम से बड़ी कुशलता से नाटककार ने प्रस्तुत किया है।

शीलवती-

'शीलवती' के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने एक ऐसे पात्र का चित्रण अपने नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में किया है जिसमें परंपरावादी, आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता तीनों ही लक्षण दिख जाते हैं। जीवन में भौतिक एवं एंद्रिय सुख के लिए वह जिस प्रकार निर्णय लेती है, उससे आज के समकालीन आधुनिक स्त्री-चरित्र का बोध होता है। शीलवती एक निम्नवर्ग के परिवार में जन्म लेती है। किन्तु उसकी इच्छा दुनिया के सुखों और वैभवों को पाने की रहती है। अतः वह अपने प्रेमी प्रतोष को छोड़कर एक ऐसे राजा से विवाह करती है जिससे वह संतान प्राप्त नहीं कर पाती है। शीलवती के विवाहपूर्व हालातों का पता उसके शब्दों में ही मिलता है, ''इतना बड़ा परिवार और पिता की सीमित आय... अभाव... वंचना... दरिद्रता.... दुःख... न पाने की कुढ़न... न होने की कड़वाहट न मुस्कराने की कचोट... न हँसने की घुटन... दूसरों के प्रति आक्रोश, अपनों के लिए क्रोध, स्वयं से घृणा ... मुझे बिल्कुल प्रारंभ से ही नियमित रूप से ये सब मिल रहा था कुछ चौथाई तोला, कुछ आध मास, कुछ एक रत्ती...।''[47] 'ओक्काक' से विवाह पश्चात् शीलवती को

वर्षों तक कोई संतान प्राप्त नहीं होती है। ओक्काक में पुरुषार्थ न होने पर भी शीलवती एक परंपरावादी भारतीय नारी की तरह हर रूप में ओक्काक को अपना पति स्वीकार करती है और अपने जीवन का यही सत्य मानकर कभी भी अपनी कामनाओं को प्रकट नहीं करती है, ''जीवन के इस रूप को अपना लिया था-(तुरंत अपना लिया है) और कभी नहीं सोचा था कि ऐसी बात भी हो सकती है। वर्ष बीतते गए ऋतुएँ और स्वीकार की लकीर और गहरी होती गई।''[48] यहाँ शीलवती के इस रूप में हमें उस परंपरा का अनुशीलन करने वाली नारी के दर्शन होते हैं जो पति को अपना परमेश्वर मानकर उसके सुख में अपना सुख मानती है। अपने दुखों को कभी बांटती नहीं, जिसे भाग्य नियति मात्र मानकर जीवन व्यतीत करती है। वर्षों राज्य को जब कोई उत्तराधिकारी शीलवती से प्राप्त नहीं होता है। तब राज्य का अमात्यपरिषद जो राज्य के कल्याण के लिए निर्णय लेने का कार्य करती है। वह यह निर्णय लेती है कि शीलवती को परंपरागत नियोग प्रथा द्वारा 'धर्मनटी ' बनना होगा और अपनी इच्छा से किया एक पुरूष का वरण करेगी, जिससे राज्य को उसका उत्तराधिकारी प्राप्त हो। सर्वप्रथम भारतीय परंपरावादी नारी शीलवती इस आमात्यपरिषद के निर्णय पर आपत्ति जताती है। किंतु राज्य की भलाई और राज्य को उसका उत्तराधिकारी देने के लिए अमात्यपरिषद विभिन्न तर्कों से शीलवती को नियोग द्वारा 'धर्मनटी' बनने के लिए मना लेती है। अमात्यपरिषद तर्क देती है, ''यह पग उतना क्रांतिकारी नहीं है जितना आप समझ रहे हैं। आजकल भी नियोग की प्रथा है। दो वर्ष पहले कुंडिलपुर और तीन वर्ष पहले अवंती राज्य में इसी प्रकार उत्तराधिकारी प्राप्त किया गया है। इतिहास साक्षी है कि एक-एक पांडव का जन्म नियोग के द्वारा ही हुआ था- उनमें से कोई भी अपने पिता की संतान नहीं था।''[49] हमारी परंपरा में सदा से स्त्री त्याग और समर्पण की मूरत रही है। शीलवती भी अपनी सारी मान-मर्यादा, परंपरा को त्याग, नियोग प्रथा द्वारा 'धर्मनटी' बनना स्वीकार करती है। जिसमें अपने पूर्व प्रेमी प्रतोश को नियोग प्रक्रिया के लिए चयन करती है। विवाह के वर्षों बाद भी शीलवती ने संयोग सुख को नहीं अनुभव किया था। जिसे वह प्रथम नियोग प्रक्रिया में अनुभव करती है। जो उसके पूरे चरित्र को ही बदल देता है। उसे एहसास होता है कि स्त्री की पूर्णता माँ बनने मात्र

में नहीं है, बल्कि स्त्री सुख, स्त्री पूर्णता, उसकी सार्थकता उससे कहीं दूसरे अर्थों में भी है। वह कहती है, ''नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं है केवल पुरुष से संयोग के सुख में मातृत्त्व केवल एक गौण उत्पादन है, जैसे दही से निकलता तो मक्खन है लेकिन तलहट में थोड़ी सी छाछ भी बच जाती है।''[50] यहाँ से शीलवती के आधुनिक चरित्र का हमें पता चलता है जब वह अपनी कामनाओं को जाहिर करती है और त्याग की भावना से बाहर निकल अपनी कामनाओं को साकार करती है।

अतः शीलवती के रूप में हमारे सामने एक ऐसी स्त्री का चित्रण सुरेन्द्र वर्मा करते हैं, जो प्रारंभ में एक भारतीय परंपरा में आस्थावान नारी होती है। किंतु जीवन में शारीरिक इच्छाओं और आवश्यकताओं को जानने के बाद वही आधुनिक स्त्री की भांति अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं को लेकर खुलकर बोलती है। अतः परंपरा और आधुनिकता दोनों की सामूहिक छवि शीलवती के अंदर देखी जा सकती है। वह कहती भी है, ''मैं एक मामूली स्त्री हूँ। जब शरीर के माध्यम से जीती हूँ तो शरीर की मांगों को कैसे नकार सकती हूँ।''[51]

ओक्काक-

'ओक्काक' सदियों से चल रहे परंपरागत सामंती विचारों वाला एक शासक है। जिसकी सोच पुरुषवादी विचारधारा से ग्रस्त है। स्त्रियों को भोग की वस्तु समझकर मात्र इस्तेमाल करता है। शीलवती से विवाह भी वह इसलिए करता है ताकि उसके माध्यम से उसके अंदर काम संबंधी पुरुर्षाथ को प्राप्त कर सके। उसे वह एक औषधी या उपकरण समझ कर विवाह करता है, ''पत्नी से अच्छा उपचार मेरे लिए नहीं हो सकता, वह संगिनी बनकर अकेलापन दूर करेगी, मित्र बनकर काम काज में सम्मति देगी... माँ की ममता, बहन का स्नेह, प्रेयसी का प्रेम- हर कमी दूर होगी, सारे अभाव पूरे होंगे, खोया हुआ आत्मविश्वास मिलेगा और जब शैया पर पहुंचेंगे वह घड़ी आएगी जब कामना की पूरी ऊष्मा के साथ नारीत्व का आह्वान करेगी तो उस मनोवैज्ञानिक क्षण में अपने आप ही..''[52] एक शासक के रूप में ओक्काक कमजोर व्यक्ति होता है। जिसका न उसके राज्य के कर्मचारी अर्थात्

आमात्य परिषद् पर नियंत्रण होता है और न अपनी पत्नी शीलवती पर। दोनों ही अर्थों में देखें तो ओक्काक का चरित्र एक कमजोर व्यक्ति का होता है। न तो वह आमात्यपरिषद् के निर्णय पर सवाल उठा पाता है, जब शीलवती को धर्मनटी बनने की आज्ञा दी जाती है, न शीलवती के धर्मनटी बनने के बाद शीलवती की बढ़ती उत्कंठा का विरोध कर पाता है। एक ओर आमात्यपरिषद परंपरा से उदाहरण देकर अपना निर्णय ओक्काक पर थोप देता कि वह शीलवती को धर्मनटी बनने की आज्ञा दे। वहीं शीलवती धर्मनटी बनने के बाद उसके नियमों के तहत ओक्काक को विवश कर देती है, जिससे वह कुछ भी नहीं कर पाता है, वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए नियमों को हथियार बनाकर इस्तेमाल करती है और धर्मनटी बनकर अपने भौतिक सुखों को पाती है।

इस प्रकार नाटककार ने ओक्कोक के माध्यम से ऐसे शासक एवं व्यक्ति का चित्रण नाटक में किया है, जो ऐतिहासिक संदर्भों में भी और आज की राजनीति में भी नौकरशाहों एवं उनके बनाए गए नियमों एवं शर्तों में उलझकर रह जाता है। सत्ता में होने पर भी सत्ता के हाथों की कठपुतली बनकर रह जाता है। जिसका प्रतिनिधित्व इस नाटक में ओक्काक एक शासक, एक पति बनकर करता है।

4.5 आठवां सर्ग

'आठवां सर्ग' का कथानक मूलतः कालिदास द्वारा रचित 'कुमार संभव' के आठवें सर्ग पर आधारित है, किन्तु नाटककार का उद्देश्य 'कुमार संभव' की कथा को यहाँ कहना नहीं है, अपितु लेखक की रचनात्मक अभिव्यक्ति की मूल समस्या को समझना है। इस दिशा में शासन अर्थात् समकालीन सत्ता किस प्रकार एक रचनाकार की रचनाधर्मिता पर प्रश्न उठाता है तथा उसकी रचना का सही मूल्यांकन किये बिना उसे प्रतिबंधित करने को आतुर हो जाता है। दोनों धुरियों के इसी टकराहट को नाटक का केन्द्रिय विषय बनाया गया है।

'आठवां सर्ग' मुख्यतः दो विषयों पर केन्द्रित है। पहला तो कृति में श्लीलता-अश्लीलता के प्रश्न को उठाया गया है। दूसरा मुख्य विषय जिसकी तरफ नाटककार इंगित करना चाहता है, वह है अभिव्यक्ति

के संदर्भ में लेखकीय रचना की स्वतंत्रता। कालिदास का 'आठवां सर्ग' पूर्ण होने के पश्चात् उनके सम्मान में समारोह का आयोजन निर्धारित किया जाता है। जिसमें सभी सभागण आसन पर विराजमान कालिदास के 'आठवें सर्ग' का काव्य पाठ बड़े मंत्र-मुग्ध होकर सुनते रहते हैं। किन्तु पाठ में जैसे ही काव्य के उस अंश का वाचन कालिदास करता जिसमें शयनगार में उमा और महादेव की रति का ज़िक्र होता है, ''दोनों के केश छितरा गए, चंदन पुछ गया, उमा की मेखला टूट गई। त्यों ही क्रोध से तमतमाया चेहरा लिए धर्मगुरु खड़े हो गए और गरजकर बोले कि यह सर्ग अत्यंत अश्लील है। जगत पिता महादेव और जग-जननी पार्वती के भोग विलास का ऐसा उद्धम ऐसा स्वच्छंद, ऐसा नग्न चित्रण। इसका रचयिता पापी है। इसके श्रोता पापी हैं। जो उसका निमित्त बने, वह पापी है। जो उसमें सहायता दे, वह पापी है, कुमारसंभव पर प्रतिबंध लगाया जाए, क्योंकि कच्चे मष्तिष्कों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा।''[53] काव्य पाठ के इसी अंश पर आकर धर्मगुरु के विरोध के कारण कालिदास का सम्मान समारोह रोक दिया जाता है। आधुनिक समाज में भी अगर हम देखें तो आज परंपरा और धर्म के नाम पर इनके ठेकेदार अक्सर कृतियों पर आरोप-प्रतिरोप लगाकर उन पर प्रतिबंध लगाने की बात करते हैं। इसी प्रकार इस नाटक में कालिदास की कृति पर अश्लीलता का आरोप लगाकर उसे प्रतिबंधित कर दिया जाता है साथ ही कालिदास का अपमान भी किया जाता है और उसे क्षमा मांगने के लिए बोला जाता है। लेकिन सवाल रचनाकार और रचना की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उठता है, साथ ही सवाल किसी भी पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर उसके मूल्यांकन का है। कालिदास का भी मानना है कि उसने काव्य का स्वच्छंद प्रसंगानुसार और स्वाभाविक वर्णन किया है, क्योंकि 'सातवां सर्ग' में नायक-नायिका के विवाह वर्णन के साथ सर्ग समाप्त होता है। अतः कालिदास आगे की कल्पनानुसार 'आठवां सर्ग' के लिए उन सभी सवालों को ध्यान में रखता है और उन्हीं के अनुसार अगले सर्ग की रचना करता है। सुरेन्द्र वर्मा इस संदर्भ में लिखते हैं, ''सातवां सर्ग नायक और नायिका के ब्याह से समाप्त होता है। क्या रूप रेखा रही उनके जीवन की ? क्या उन्होंने एक-दूसरे में अपने सपनों को पाया, जो यौवन के आते ही देखे जाने लगते हैं ? क्या उन्होंने

तन और मन का वह सुख जाना, जो विवाह के बंधन को स्थाई बनाता है ? कथा के इस मानवीय आधार को हटा दूँ ? स्वाभाविक विकास की धारा को रोक दूं... ब्याह के एकदम बाद पुत्रोत्पत्ति हो जाएगी तो बीच की इस खाई को पाठक कैसे भरेगा ? क्या कथा का कलात्मक दोष नहीं होगा।"[54] अतः सुरेन्द्र वर्मा इस तथ्य के माध्यम से इस नाटक में यह कहना चाहते हैं कि किसी भी कृति का स्वरूप उसकी विषयवस्तु के अनुकूल ही होना आवश्यक है। इस प्रकार कालिदास ने भी स्वाभाविक रचना का स्वरूप कथावस्तु के अनुरूप ही रखा है। जिसमें ब्याह के पश्चात शिव-पार्वती की रति क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। जो स्वाभाविक है। सुरेन्द्र वर्मा लिखते हैं कभी भी पति-पत्नी के बीच का प्रणय अश्लील नहीं होता, बल्कि यदि इस दृष्टि से उनके संबंध को कोई देखता है तो उसकी दृष्टि का दोष है, ''आठवें सर्ग में पति-पत्नी के बीच कुछ भी अश्लील नहीं होता... इसमें अश्लीलता उसी को मिलेगी, जिसकी दृष्टि अधूरी होगी, अर्थात् जो केवल नग्नता देखेगा, उसे औचित्य देने वाली पूर्णता नहीं, सार्थकता नहीं।''[55] इस दृष्टि से सुरेन्द्र वर्मा नाटक के माध्यम से यह संदेश सम्प्रेषित करना चाहते हैं कि अश्लीलता व्यक्तियों की दृष्टि में हो सकती है। श्रेष्ठ कृतियाँ हमेशा स्वाभाविक, क्रमिक एवं सत्य की स्थापना करती हैं। 'आठवां सर्ग' के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा रचनाकार और रचना से जुड़े एक गंभीर प्रश्न को इस नाटक के माध्यम से रेखांकित करते हैं कि किस प्रकार एक रचनाकार और उसकी रचना को राजसत्ता एवं उसके नीतियों पर आश्रित रहना पड़ जाता है या प्रतिबंधित हो जाती है। नाटक में चन्द्रगुप्त कालिदास से इस प्रसंग पर चर्चा करते हुए कहता है कि माना तुम एक श्रेष्ठ रचना करते रहोगे, पर क्या बिना राज्याश्रय के तुम्हारी कृति वह सम्मान या ख्याति प्राप्त कर पाएगी ? अतः वह बिना राज्याश्रय के कुएँ के मेंढक की तरह उसी में टर्र-टर्र करती रह जाएँगी, ''रचनात्मक प्रतिभा अपने आप में अधूरी है, क्योंकि रचना को प्रकाश में लाने के लिए, उसके प्रचार और प्रसार के लिए, उसकी स्वीकृति और मान्यता के लिए कुछ माध्यमों की आवश्यकता होती है।''[56]

श्रेष्ठ रचनाकार की रचना ही कहते हैं उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम होता है, कालिदास भी अपनी रचनात्मक प्रतिभा के माध्यम से जन के बीच अपनी एक विराट पहचान बना लेते हैं। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'की स्वर्ण जयंती पर मदनोत्सव वाले दिन सत्तापक्ष द्वारा सम्मान समारोह में अपना सम्मान स्वीकार नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी ख्याति उनकी पहचान जन-जन के बीच उनकी रचना से हो चुकी थी। अतः कालिदास अपने सम्मान में अभिनंदन समारोह का बहिष्कार कर देते हैं। कालिदास कहतें हैं, ''जीवन के एक मोड़ पर सत्ता की सहायता की आवश्यकता थी अब नहीं है। अब अगर मेरी रचना पर यहाँ रोक लगाएगा तो वह दूसरे राज्य में सप्तम स्वर में सुनी जाएगी। मुझे बंदीगृह में डाल देगा तो संकीर्ण बुद्धि और कुटिलमन कहलायेगा और अगर मेरी हत्या कर देगा तो लोकमत उसके विरुद्ध आषाढ़ के पहले काले कजरारे मेघों के समान भड़क उठेगा।''[57]

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा ने 'आठवां सर्ग' के माध्यम से रचनाकार और सत्ता के बीच अक्सर देखे जाने वाले उस द्वंद्व को उजागर किया है। इसमें यह स्पष्ट करना चाहा है कि किसी भी श्रेष्ठ रचना को सत्ता के आश्रय की तभी तक जरूरत होती है, जब तक वह जनसमूह तक नहीं पहुँच जाती है। श्रेष्ठ रचना अपने समकालीन समाज को तथा साथ ही साथ अपने साहित्यभाव से लोगों का सदियों तक मार्गप्रशस्त करती रहती है। साथ ही नाटककार ने इसी साहित्य में श्लील-अश्लील के प्रश्नों को उठाया है, जिसमें यह बताया है कि सदा से साहित्य का मूल्यांकन करने का भार सत्तापक्ष ऐसे लोगों को देता आया है, जिसे साहित्य का अधूरा ज्ञान होता है, साथ ही व्यक्तिगत ईर्ष्या, राजनीतिक लाभ और साहित्यिक गुटबंदी भी अक्सर श्रेष्ठ साहित्य का मूल्यांकन गलत अर्थों में करती है। ताकि सदैव समाज उस साहित्य और कृति को उनकी नज़र से देखे जिन संदर्भों में वे उन्हें दिखाना चाहते हैं। इस प्रकार आधुनिक समाज की विभिन्न साहित्यिक, राजनीतिक गठित समितियों पर भी नाटककार प्रश्न उठाता है। जो कि साहित्य का मूल्यांकन एक सच्चे आलोचक के रूप में नहीं करती हैं, जिसके कारण समाज कई श्रेष्ठ रचनाओं से भविष्य में अवगत नहीं हो पाता है।

कालिदास-

'आठवां सर्ग' में सुरेन्द्र वर्मा 'कालिदास' के माध्यम से एक ऐसे पात्र का चित्रण करते हैं जो एक साहित्यकार है। जिसका कार्य है साहित्य की रचना करना तथा किसी भी कथा को साहित्य के माध्यम से कहते हुए उसकी कलात्मकता, सार्थकता और क्रमबद्धता को बनाए रखना। जिसे कालिदास चन्द्रगुप्त के राजाश्रय में पूर्णतः ईमानदारी और लगन से करता भी है। इस साहित्यिक कर्म में वह 'आठवां सर्ग' की रचना करता है। जिसमें शिव-पार्वती के विवाह पश्चात् आठवां सर्ग में दाम्पत्य मिलन का जिक्र होता है। किंतु धर्मगुरु 'आठवां सर्ग' सुनते-सुनते पल भर में क्रोध से भर उठते है और 'आठवां संर्ग' पर प्रतिबंध लगाने को कहते हैं। कालिदास अपनी रचना पर प्रतिबंध स्वीकार करते हैं, किन्तु उसके स्वरूप में परिवर्तन स्वीकार नहीं करते हैं। वह धर्माध्यक्ष, चंद्रगुप्त तथा सभी अन्य लोगों के सुझाव को अस्वीकार कर देते हैं। कालीदास अस्वीकार करने का कारण काव्य में कलात्मक दोष के आने का संदेह जताते हैं। वे कहते हैं, '' 'सातवां' सर्ग नायक और नायिका के ब्याह से समाप्त होता है और आठवें सर्ग की पहली पंक्ति में पुत्र का प्रादुर्भाव हो जाएगा ? बीच के नौ महीने नवदम्पत्ति कहाँ रहे ? कैसे रहे ? क्या रूपरेखा रही उनके जीवन की ? क्या उन्होंने एक-दूसरे में अपने स्वप्नों को पाया, जो यौवन के आते ही देखे जाने लगते हैं, क्या उन्होंने तन और मन का वह सुख जाना, जो विवाह के बंधन को स्थाई बनाता है ? ब्याह के एकदम बाद पुत्रोत्पत्ति हो जाएगी तो बीच की इस खाई को पाठक कैसे भरेगा ? क्या यह कथा का कलात्मक दोष नहीं होगा? इससे काव्य के समग्र प्रभाव को ठेस नहीं पहुँचेगी ?''[58] कालिदास एक साहित्यकार होने के नाते साहित्य को कलात्मक दोष से बचाते हैं। साथ ही साहित्यकारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा साहित्य के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं, साथ ही साहित्यकारों के संघर्षशील जीवन का चित्रण कालिदास के माध्यम से करते हैं। कालिदास आवेग में यह निर्णय लेते हैं कि वह 'कुमार संभव' को अधूरा छोड़ देंगे पर उस पर कलात्मक दोष नहीं लगने देंगे। कालिदास कहतें हैं, ''आठवें सर्ग पर आगे नहीं लिखूँगा। इस रचना को एक प्रकार से भूला ही दूँगा। यह कभी मेरे घर से बाहर नहीं

निकलेगी? किसी गोष्ठी में इसका पाठ नहीं होगा। किसी तक इसकी प्रतिलिपि नहीं पहुँचेगी। इतने से लोग संतुष्ट हो जाएँगे ? फिर तो किसी को आपत्ति नहीं होगी। कई बार श्रम व्यर्थ भी हो जाता है। समझ लूँगा कि कुमार का जन्म संभव नहीं हुआ गर्भ में ही उसकी हत्या हो गई।''[59]

इस प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने आज आधुनिक काल में साहित्यकारों के जीवन संघर्ष को कालिदास के जीवन संघर्ष से जोड़कर दिखाने का प्रयत्न किया है। नाटक में कालिदास एवं उनकी रचना के माध्यम से यह दिखाना चाहा है कि यदि रचना श्रेष्ठ है तो किसी राज्य में उस पर प्रतिबंध क्यों न लगा दिए जाए, किसी साहित्यकार का सम्मान किसी राज्य में भले न हो, लेकिन श्रेष्ठ साहित्यकार एवं साहित्य की पहचान कर जनता उन्हें खुद-बखुद सम्मानित कर देती है। कुछ समय बाद 'कुमार संभव' की ख्याति चारों और फैल जाती है। तब कालिदास कहते हैं, ''जीवन के एक मोड़ पर सत्ता की सहायता की आवश्यकता थी .. अब नहीं है। (ठहरकर) अब ? अगर शासन मेरी रचना पर यहाँ रोक लगाएगा तो वह दूसरे राज्य में सप्तम सुर में सुनी जाएगी। मुझे बंदीगृह में डाल देगा तो संकीर्ण बुद्धि और कुटिल मन कहलाएगा और अगर मेरी हत्या कर देगा तो लोकमत उसके विरुद्ध आषाढ़ के पहले काले कजरारे मेघों के समान भड़क उठेगा।''[60]

अतः कालिदास के माध्यम से आधुनिक समकालीन समाज में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे प्रश्न को सुरेन्द्र वर्मा ने उठाया है। साथ ही कालिदास के रूप में साहित्यकारों के जीवन संघर्ष को उजागर किया है और साथ ही श्लीलता और अश्लीलता जैसे प्रश्नों को भी कालिदास की रचना के माध्यम से उठाया है। अक्सर साहित्य का मूल्यांकन ऐसे लोग करते हैं, जिन्हें साहित्य का अधूरा ज्ञान होता है या किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर नकारात्मक आलोचना साहित्य की करते हैं।

4.6 छोटे सैयद बड़े सैयद

सुरेन्द्र वर्मा ने 'छोटे सैयद बड़े सैयद' नाटक के माध्यम से मध्यकालीन भारत में औरंगजेब शासन के पश्चात् सत्ता प्राप्ति हेतु उत्पन्न हुए राजनैतिक संघर्ष और षड्यंत्र को उजागर किया है। किंतु

नाटककार का मूल उद्देश्य मध्यकालीन इतिहास को मात्र नाट्यरूप देना नहीं है, बल्कि इतिहास को नाटक के माध्यम से आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करना है। जिससे आधुनिक परिस्थितियों को जाना, समझा जा सके। आज जिस प्रकार राजनीति में नैतिकता का पतन होता जा रहा है और मानवीय सिद्धांतहीन राजनेता सत्ता पर काबिज हैं, उस भाव को नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

नाटक में भाड़ नक्काल और बहुरूपियों द्वारा प्रस्तुत गीत आज के राजनैतिक हालातों तथा देश की दशा और दिशा की ओर इंगित करता है। 1980 में लिखा गया यह नाटक न केवल अपने समकालीन राजनैतिक हालातों को उजागर करता है, बल्कि भारतीय राजनीति के भविष्य की झलक भी दिखाता है। 1707 ई॰ में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल शासन के इतिहास में राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल एवं अस्थिरता का दौर था। जहाँ सत्ता के लिए औरंगजेब के चारों पुत्रों में युद्ध ठन गया। औरंगजेब के चारों पुत्रों जहांदार शाह, अजीम उस शान, रफी उलशान और जहानशाह में से जहांदार जुल्फिकार खां की सहायता से जो ईरानी दल का नेता था, सत्ता प्राप्त करने में सफल होता है। किंतु जहांदार स्वभाव से ऐय्यास है जो न सही से सत्ता संभालता है न अपनी राजनैतिक स्थिति को मजबूत बनाता है। परिणाम स्वरूप जहांदार शाह का भतीजा ने उसकी फारूख हत्या करवाकर खुद सत्ता पर काबिज हो गया। सत्ता की खातिर हत्या का दौर और फिर सत्ता पर विराजमान होने का आंतरिक कलह और षड्यंत्र एक के बाद एक चलता रहा। इस मुगलीय शासन के उथल-पुथल से उत्पन्न संघर्ष को डॉ. विजय पाल के शब्दों में जान सकते हैं, ‘‘कुछ समय पश्चात् जहांदार शाह के भतीजे फर्रूखसीयर ने सैयद बंधुओं की सहायता से उसे मार डाला और स्वयं शासक बन बैठा। कृतज्ञ फर्रूखसीयर ने भी वही दुहराया तथा अब्दुल्ला को वजीर और हुसैन अली को मीर बख्सी के रूप में स्वीकार किया। महत्वपूर्ण पद पाकर ‘सैयद बंधु शक्तिशाली हो गए। सम्राट ने सैयद बंधुओं की शक्ति पर अंकुश लगाना चाहा तथा उनके जुए को अपने ऊपर से उतार फेंकने की सोची। इस हेतु षड्यंत्र रचे, परंतु सैयद बंधु सम्राट से अधिक चालाक थे। उन्होंने सम्राट को ही समाप्त कर दिया। इसके बाद इस शून्य को भरा रफी उद्दजति को शासक बनाकर, लेकिन वह भी कुछ दिन ही शासन

कर सका । इसके बाद क्रमशः रफीउद्दौला तथा मुहम्मदशाह को सिंहासन पर बैठाया गया । मुहम्मदशाह ने दोनों उच्च पदाधिकारियों अबदुल्ला खां और हुसैन अली को मरवा दिया। स्पष्ट है कि औरंगजेब के बाद एक के बाद एक शासक की नियुक्ति होती है, जिससे अस्थिरता बनी रहती है कि अगला शासक कौन होगा व कितने दिन तक शासन करेगा।''[61] नाटक के इस प्रसंग के माध्यम से आज की आधुनिक समकालीन राजनीति में हो रही उथल-पुथल को चित्रित किया गया है। इसके अलावा सत्ता की अस्थिरता की ओर भी इंगित किया गया है। आज राजनेता सत्ता तो प्राप्त कर लेते हैं पर जनता के लिए एक ठोस व्यवस्था और निर्णय लेने में नाकाम हैं, जिससे एक अव्यवस्था का माहौल बना रहता है। विपक्षी पार्टी उनका विरोध करती है, ऐसी स्थिति में स्थाई सरकार का निर्माण कई बार नहीं हो पाता। अतः इस संदर्भ में 'छोटा सैयद बड़ा सैयद' नाटक एक सफल नाटक है जो आज भी समय सापेक्ष है। एक और पक्ष जो इस नाटक में देखा जा सकता है वह है राजनीति में धर्म का इस्तेमाल। धर्म के नाम पर राजनीति सदियों से होती आ रही है। आज भी वर्तमान परिदृश्य में धर्म का सहारा लेकर राजनीति की जाती है। आज भी सत्ता प्राप्ति हेतु राजनेता सारे धार्मिक हथकंडे इस्तेमाल करते हैं। यदि आज आधुनिक भारतीय राजनैतिक परिदृश्य देखें तो धर्म के नाम पर हर जगह राजनीति की जाती है । जो एक ज्वलंत राजनैतिक सामाजिक मुद्दा है । इस नाटक में भी राजनीति में धर्म का इस्तेमाल कैसे किया जाता है, उसे दिखाया गया है, ''एक सूरत है, ऐसी कि उससे सैयदों के खिलाफ हिंदू जज्बात भी भड़क सकते हैं। पिछले हफ्ते काजी ने फैसला दिया है कि हिंदू लड़की सावित्री मुसलमान मानी जानी चाहिए, क्योंकि अपने बाप के इस्लाम कुबूल करते वक्त वो नाबालिग थी। राय न हो पाने की वजह से लड़की को फिलहाल गली भैरोंवाली के सेठ जीवनदास के यहाँ भेज दिया गया है। लड़की को गायब करके सेठ से पचास हजार अशर्फियों की फिरौती मांगी जाए और हासिल हो जाने पर लड़की की लाश मस्जिद से बरामद कर ली जाए । तो दुरुस्त है हाजरीन। सैयद बिरादरान के खिलाफ पहली मुहिम खोल दी जाए।''[62] इस प्रकार इस अंश में देखा जा सकता है कि कैसे धर्म का सहारा लेकर सत्ता पाने की राजनीति की जाती है, जिसमें विरोधियों

को परास्त करने मात्र के लिए एक निर्दोष लड़की की जान ले ली जाती है। आज की इस आधुनिक समकालीन राजनीति का एक चेहरा यह भी है जहाँ हत्या, अपहरण फिरौती को अंजाम दिया जाता है। जिसमें धर्म का इस्तेमाल एक अस्त्र के रूप में किया जाता है, जिसका वार खाली नहीं जाता है। सत्ता से जुड़ा एक सत्य यह भी है कि धन सम्पन्न शक्तिशाली लोग सदैव अपने फायदे के लिए सत्ता का इस्तेमाल करते हैं। अपने महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सत्तापक्ष को अपने साथ मिलाकर अपने अनुसार कार्यों के अनुरूप नियमावली और योजनाएँ निर्धारित करवाते हैं। इस नाटक में भी अमीर मनसबदार और व्यापारियों को नजरअंदाज सम्राट नहीं कर सकता था, क्योंकि ये शक्तिशाली वर्ग सम्राट की सत्ता चलाने तथा वित्तीय सहायता दोनों रूपों में मदद करते हैं। जिसके एवज में वे अपनी मनमानी योजनाएँ स्वीकृत करवा लेते हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप 'छोटे सैयद, बड़े सैयद' नाटक के माध्यम से हम कह सकते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा ने इतिहास से एक घटना उठाकर आज के आधुनिक समकालीन राजनैतिक हालात पर प्रकाश डाला है। जिसमें राजनीतिक षड्यंत्र, उथल-पुथल, सत्ता के खातिर हत्या, धर्म के माध्यम से राजनीति और जिसमें आम जनता के आपसी सामाजिक संबंध टूटते हैं, धर्मिक असहष्णुता फैलाती है। अतः ऐतिहासिक पात्र एवं मिथकीय कथा के माध्यम से आधुनिक समकालीन समस्याओं को उजागर करता हुआ एक सफल नाटक है।

4.7 एक दूनी एक

आज के उच्च-मध्यवर्गीय समाज और नारी मनोविज्ञान से संबंधित वास्तविक सच्चाई को आधार बनाकर सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक 'एक दूनी एक' का लेखन किया है। आज अपने भारतीय परंपरागत सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों से दूर होते, कटते स्त्री-पुरुष किस प्रकार निजी सुखों (यौन संबंधों) के पीछे भागते जा रहें हैं, इसी पर आधारित है यह नाटक 'एक दूनी एक'। कथानक किसी स्थान विशेष से संबंधित नहीं है। नाटक में मुख्य पात्रों के बीच द्वंद्व और उनकी उलझन भरी जीवन की

परिस्थितियाँ दिखाई गई हैं। आज भारत में उच्च मध्य वर्ग के स्त्री-पुरुष जैसे-जैसे अनैतिक संबंधों की ओर बढ़ते जा रहे हैं वैसे-वैसे भारतीय दाम्पत्य जीवन की जो परिभाषा रही है, जो परंपरा रही है, उससे वे दूर होते जा रहे हैं। समुद्र को प्रतीक बनाकर नाटककार इसी बात को कहना चाहता है, ''समुंदर बाल्कनी तक आ गया है... एक के बाद एक लहरें... दीवार से टकरा रही हैं, घर में पानी भर रहा है... मैं चीख कर कहती हूं समुंदर से, यह तो गलत बात है। कुदरत का कायदा है कि तुम अपनी हद नहीं छोड़ सकते। फिर ऐसा क्यों? समुंदर कहता है। कायदा था जहा तक नरीमन नहीं था। जब तुम लोगों ने जबरदस्ती मेरा इलाका और जले पर नमक छिड़कते हुए रखा रिक्लेमेशन... तभी से अपनी हद न छोड़ने वाला कायदा मैंने तोड़ दिया। अब मैं अपना सारा एरिया रिक्लेम कर रहा हूँ।''[63]

आज पश्चिमी सभ्यता की ओर जिस प्रकार भारतीय समाज अंधी दौड़ लगा रहा है, उसमें वह उतनी ही अपनी परंपरा से दूर होता जा रहा है। इस अनुकरण का एक काला सच यह है कि आज स्त्री-पुरुष विवाहपूर्व और विवाहेत्तर अवैध संबंध जिस प्रकार बना रहे हैं, उससे आगे चलकर पश्चिमी देशों की तरह भारतीय समाज का भी सामाजिक ढांचा बन के रह जाएगा। जहाँ आपसी संबंधों का ठहराव नहीं होगा। भारतीय परंपरा में स्त्री-पुरुष के बीच शादी के बाद एक विश्वास, एक समर्पण हुआ करता था, वह अब धीरे-धीरे धूमिल होता जा रहा है। सुरेन्द्र वर्मा का ध्येय भी इस नाटक के माध्यम से इस समस्या को उठाना है। विवाह के पश्चात् आज उच्च-मध्यवर्ग के लोग अपनी ज़िंदगी को उच्च वर्गों के साथ जोड़ कर देखना चाहते हैं और उस दिखावे की ज़िंदगी में वे दो तरफ़ा ज़िंदगी जीते रहते हैं। आज भारतीय उच्च-मध्यवर्गीय समाज का यह एक कटु सत्य बनता जा रहा है। आधुनिक ज़िंदगी के इस एक रूप को नाटक के इस अंश में देखा जा सकता है, ''रूपेश बंसल की पत्नी का अन्य पुरुष से प्रेम व्यापार चल रहा है। पूनम नारंग के पति मनोज का रीता वाचानी से अनैतिक संबंध है। इतना ही नहीं नाटक का प्रमुख पात्र 'आदमी' अनेक महिलाओं से अपनी 'कुडंलिनी' जाग्रत करवा चुका है। बीना, सपना, पायल, राजहंसिनी तो कभी गाल के गड्डे वाली आदि।''[64]

आज समाज आत्मक्षीण होता जा रहा है और प्रेम मांसल होता जा रहा है। विवाह में बंधने के बाद भी मनुष्य अन्यत्र संबंध स्थापित करना चाहता है या विवाह जैसे बंधन में बंधना ही नहीं चाहता है। 'एक दूनी एक' नाटक में भी मुख्य पात्र 'आदमी' शादी के बंधन में बंधना नहीं चाहता है। विवाह के कई ऐसे अवसर आए पर वह भाग खड़ा होता है। कई लड़कियों से शारीरिक संबंध बनाने के बाद भी वह शादी करके जिम्मेदारी से भाग खड़ा होता है। दूसरी ओर नाटक की मुख्य स्त्री पात्र प्रेम में कई बार धोखा खा चुकी होती है। अपने प्रेमी को अपना तन-मन सब अर्पण करने के बाद भी उससे उसे धोखा ही मिलता है। नाटककार इन सभी प्रसंगों से यह बताना चाहता कि आज के इस आधुनिक भारतीय समाज में भी एक ऐसा वर्ग तेजी से बढ़ता जा रहा है जो शादी जैसी प्रथा में भरोसा नहीं रखता और शादी करते भी हैं तो समाज को दिखाने मात्र के लिए। शादी के बंधन इनके लिए इनकी स्वतंत्रता पर अंकुश के समान हैं। अतः आज पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण करते हुए जो एक बड़ा भारतीय समाज का तबका आगे बढ़ता जा रहा है, वह अपनी परंपरा एवं संस्कृति से एक ओर कटता जा रहा है। जिससे भारतीय परंपरागत मूल्य संकट में पड़ते जा रहे हैं। सुरेन्द्र वर्मा अंध आधुनिकरण के पीछे भागते उच्च-मध्यवर्ग के लोगों को इस नाटक के माध्यम से इंगित करने का प्रयत्न करते हैं।

नाटक में सांकेतिक रूप में ऐसी शब्दावली का इस्तेमाल किया गया है जो यौन संबंधों को दर्शाती है। इसमें अधिकतर पात्रों को भोगवादी ही दिखाया गया है, जो आज के समाज में एक उदाहरणार्थ चरित्र हैं। नाटककार ने इनकी ज़िंदगी के केन्द्र में काम को ही दिखाया है, जो कि आज मानवीय समाज का एक कटु सत्य भी है। नाटककार ने नाटक में कुछ चरित्रों के माध्यम से यह दिखाया है कि आज किस प्रकार इनकी मानसिकता भी ऐसी होती जा रही है, जहाँ अपनी ज़िंदगी के सभी कारणों का जड़ 'काम' को ही मानने लगते हैं। उदाहरण स्वरूप नाटक में मुख्य पात्र 'आदमी' अपनी पीठ के दर्द का कारण भी यौन संबंध को मानता है, ''आदमी : पीठ में घनघोर दर्द हो रहा है। बात

यह है कि बहुत दिनों से मेरी कुंडलिनी जाग्रत नहीं हुई। यह जो मेरी रीढ़ की हड्डी शुरू होती है, न नीचे से... यहाँ हल्के-हल्के सहला देने से मीठी-मीठी सिहरन होती है।''[65]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'एक दूनी एक' नाटक आज के आधुनिक समाज में उच्च मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष के बीच स्थापित होता अनैतिक संबंध का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। स्त्री-पुरुष के बीच विवाहपूर्व, विवाहेत्तर अनैतिक संबंध, विवाह के प्रति अनास्था, साथ ही प्रेम और रिश्तों में स्थायित्व की इनकी कोई कामना नहीं होना आदि को विस्तारपूर्वक इस नाटक में चित्रण किया गया है। यही आधुनिक युग और समकालीन भारतीय समाज का सत्य बनता जा रहा है। जिसे नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने सटीक भावों, कथानक, भाषा और पात्रों द्वारा इस नाटक में चित्रित किया है। नाटक का शीर्षक स्वयं अकेले व्यक्ति की स्थिति का आभास करवा रहा है। अतः परंपरा के मूल्यों का अतिक्रमण कर आधुनिकता के नाम पर जो अवमूल्यन परंपरा की शुरूआत भारतीय, खासकर उच्च-मध्यवर्गीय समाज में हो चुका है, उसे ही बेबाकी से दिखाना नाटककार का ध्येय है।

4.8 शकुन्तला की अंगूठी

सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक 'शकुन्तला की अंगूठी' कालिदास द्वारा रचित कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' को आधार बनाकर लिखा है। यह नाटक भी सुरेन्द्र वर्मा का ऐतिहासिक पौराणिक मिथकीय कथा केन्द्रित है, किंतु नाटक का अपना एक समकालीन संदर्भ और कथा उद्देश्य है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का सम्पूर्ण सौंदर्यबोध हम 'शकुन्तला की अंगूठी' में देख सकते हैं। किंतु नाटक और नाटककार का ध्येय एक नए संदर्भ में समकालीन व्याख्या करना है।

नाटक का मुख्य पुरुष पात्र कुमार और स्त्री पात्र कनक को सुरेन्द्र वर्मा ने 'दुष्यंत' और 'शकुन्तला' के रूप में चित्रित किया है। किंतु मुख्य भाव वही है जो 'शकुन्तला' और 'दुष्यंत' के पीछे छिपा भाव है। अर्थात् पात्र के रूप में 'शकुन्तला' और 'दुष्यंत' हैं तो पौराणिक पात्र किंतु उनका भाव आधुनिक युवा का है। आज वर्तमान परिदृश्य में स्त्री और पुरुष दोनों ही बाहर व्यावसायिक कार्यो

के लिए घर से निकलते हैं। जहाँ साहचर्य जन्य मित्रता बन जाती है। यह मित्रता कब प्रेम का रूप ले लेती है यह पता नहीं चलता है। प्रस्तुत नाटक 'शकुन्तला की अंगूठी' में भी कनक और कुमार एक रंगसंस्थान 'कुछ न कुछ' से जुड़े रहते हैं। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की प्रस्तुति हेतु पूर्वाभ्यास करते रहते हैं जिसमें कनक शकुन्तला और कुमार 'दुष्यंत' के चरित्र को निभाते रहते हैं। इन चरित्रों को पूर्वाभ्यास करते हुए कब उन्हें वास्तविक प्रेम हो जाता है उन्हें खुद पता नहीं चलता है। इस एहसास का आभास उन्हें तब होता जब एक-दूसरे से अलग होकर एक-दूसरे के लिए बेचैनी महसूस करते हैं। कनक का एक आधुनिक स्त्री के रूप में चित्रण किया गया है। जो न केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है, बल्कि मानसिक रूप से भी अपने फैसले स्वतंत्र रूप से लेती है। शादी-विवाह के संदर्भ में अपनी माँ से किये गये संवाद से इस बात की पुष्टि होती है,

''माँ: अब नहीं करोगी तो कब करोगी? चंपा और चमेली के तो एक-एक बच्चा भी हो गया।

कनक मेरी तरफ से चार-चार हो जाए।

कनक : जिसमें बुराई दिखाई न दे, उससे शादी कर लो ?

माँ : अच्छा कुंदन के बारे में क्या राय है।

कनक : मुझे कुंदन के बारे में राय बनाने के अलावा और भी काम है कुछ।''[66]

कनक का माँ से यह संवाद उसको स्पष्टवादी, स्वेच्छावादी तथा समकालीन आधुनिक विचारों की स्त्री साबित करता है। शादी से बढ़कर उसके जीवन का लक्ष्य और भी है यह स्पष्ट होता है।

कालिदास की 'शकुन्तला' से यदि कनक की तुलना करें तो पाते हैं कि कालिदास की 'शकुन्तला की प्रकृति है- कोमलता और विश्वास करना। वहीं सुरेन्द्र वर्मा की नायिका कनक प्रेम में धोखा खाई एक ऐसी आधुनिक युवा स्त्री है जो अब किसी पर भी भरोसा नहीं करती है। आशंका और संदेह उसके स्वभाव का हिस्सा बन चुका है। कुमार के साथ प्रेम में वह तन-मन से सभी कुछ देकर भी

कुमार के साथ बनाए रिश्ते को एक गहराई और ठहराव नहीं दे पाती है। आज आधुनिक युग में प्रेम का अर्थ बदलता जा रहा है। काम केंद्रित संबंध आज सर्वोपरि होता जा रहा है। अतः आज की आधुनिक युवा पीढ़ी में वह परंपरागत आदर्श प्रेम स्वरूप नहीं रह गया है। प्रेम अब आत्मिक न होकर शारीरिक हो चुका है। शाश्वत न होकर क्षणिक भर का रह गया है। नाटक का नायक कुमार भी अपने प्रेम को अपने जीवन में वह स्थान नहीं देता है और कैरियर बनाने हेतु अमेरिका चला जाता है। प्रेम संबंधों का यह प्रपंच आज के आधुनिक समाज का हिस्सा बन चुका है 1 अतः ऐसे हालात कनक के साथ पहले भी घटित हो चुके होते हैं जब उसका पहला प्रेमी नील झूठ बोलकर उसे छोड़कर चला जाता है। इसके लिए कनक को जिम्मेदार बनाता है, ‘‘नील : तुम इस तरह पड़ी थी मेरे पीछे कि मेरे मुँह से झूठ निकल गया और लिखा मैंने इसलिए नहीं कि अभी मैं शादी करना नहीं चाहता।

कनक : (आहत होकर) इसका मतलब तुमने यह भी झूठ कहा था कि तुम मुझे चाहते हो ?

नील : मैं तुम्हें चाहता हूँ। ऐसा शादी के बिना सच नहीं हो सकता ?’’[67]

इस प्रकार नील भी शादी से अधिक अपने कैरियर को महत्व देता है। आज आधुनिक युवा पीढ़ी के लिए प्रेम का लक्ष्य और अर्थ शारीरिक संबंध मात्र होता जा रहा है। प्रेम का संबंध भावनाओं से नहीं रह गया है। कैरियर बनाने के दौरान प्रेम को एक पड़ाव मात्र मानते हैं, जहाँ आज की युवा पीढ़ी इसे जीवन के इस पड़ाव पर अपने लिए एक आवश्यक उपलब्धि मानती है। जिसके बाद युवा पीढ़ी आगे बढ़ जाती है।

एक और समस्या से सुरेन्द्र वर्मा हमें इस नाटक के माध्यम से रूबरू करवाते हैं, वह है गांव से शहर की तरफ लोगों के पलायन की समस्या, जिसे उन्होंने मछुए के माध्यम से चित्रित किया है। गांव के लोगों के रूप में मछुआ एक प्रतीक है। गांव के लोग गांव में रोजगार नहीं मिलने पर उससे पलायन कर शहर की तरफ दौड़ते हैं। शहरी जीवन ग्रामीण जीवन पर हावी होता जा रहा है। वहाँ का शुद्ध और निश्छल वातावरण शहरी पाश्चात्य संस्कृति में आक्रांत होता जा रहा है। गांव से शहर जाकर

लोग वहाँ की संस्कृति, परंपरा और जीवन शैली अपना लेते हैं। सुरेन्द्र वर्मा ने इस संदर्भ में स्पष्ट किया है, "दरअसल यह नाटक गांव और शहर का कंफर्टेशन है। ज़िंदगी बिल्कुल सही थी, लेकिन जैसे ही शहर की हवा यानी दुष्यंत यानी पोल्युशन आता है, आश्रम की आत्मा यानी शकुन्तला की ज़िंदगी में जहर घुल जाता है। राज महल से निकाले जाने के बाद उसे फिर पनाह कहां मिलती है ? मारीच आश्रम में ... और आखिरकार वो गांव का सीधा-सादा मछुआ है, जो नए सिरे से ज़िंदगी जीता है।"[68]

अतः स्पष्टत: यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' को आधार रूप में ग्रहण कर उसके मूल भाव को बिना ठेस पहुँचाए आधुनिक समकालीन संदर्भ में उसे प्रस्तुत किया है। कालिदास की शकुन्तला जहाँ भाग्य पर भरोसा करती है, वहीं सुरेन्द्र वर्मा की शकुन्तला भाग्य और निमित्ति में भरोसा नहीं करती है। वह अपना निर्णय खुद लेती है। तभी तो अपनी अंगूठी वापस लेकर वह सुर्दशन को पहना देती है। जिसके लिए न उसे अफसोस है न ग्लानि। अतः विवाह पूर्व प्रेम में शारीरिक संबंध बनाना आज के आधुनिक युवा पीढ़ी के लिए किसी भी प्रकार से अनैतिक नहीं है। जैसा कि इस नाटक में भी दिखाया गया है। अतः कालिदास की 'शकुन्तला की अंगूठी' में कनक के प्रेम का आखिरी उद्देश्य शारीरिक संबंध ही था। कुमार और नील के लिए प्रेम मात्र एक क्षण भर का पड़ाव मात्र है। जिसमें कैरियर बनाने के दौरान जीवन के सुखों का उपयोग कर आगे बढ़ जाना है। अतःऐतिहासिक एवं मिथकीय कथा पर आधारित सुरेन्द्र वर्मा का यह एक और सफल नाटक है, जो आधुनिक भारतीय समाज के स्त्री-पुरुष के संबंधों को दर्शाता है। अपनी परंपरागत ग्रामीण जीवन शैली से कटकर आधुनिक शहरी जीवन में व्यक्ति के व्यक्तित्व को घुलते दिखाता है, जहाँ आज मनुष्य अपने जीवन में भावनाओं को कोई स्थान नहीं देता है। बल्कि अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति हेतु लगातार भागता ही रहता है। इन सभी आधुनिक सामाजिक विषयों को नाटक में सफलतापूर्वक उठाया गया है।

कुमार-

'शकुन्तला की अंगूठी' नाटक का मुख्य पात्र कुमार है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में जिस किरदार में दुष्यंत होता है, उसी किरदार में 'कुमार' 'शकुन्तल की अंगूठी में' होता है। सुरेन्द्र वर्मा ने पात्र और कथा संदर्भ पौराणिक एवं आधुनिक संदर्भों में लिया है। 'कुमार' के माध्यम से आज के उस आधुनिक मनुष्य का चित्रण नाटककार ने किया है, जो द्वंद्वात्मक स्थिति में फंसा होता है, साथ ही उन्होंने वर्तमान मनुष्य की प्रवृत्तियों का भी चित्रण कुमार के माध्यम से किया है।

कुमार आज का वह आधुनिक युवक है, जो अपने भविष्य (करियर) को लेकर जागरूक है। जिसके लिए वह अपनी प्रेमिका के साथ ही उस नाट्य मंडली को छोड़कर अमेरिका चला जाता है। जिसे वह काफी लगन और मेहनत से शुरू किये होता है। आज जिस प्रकार आधुनिक मनुष्य खुद को समाज से काट अकेला होता जा रहा है। उससे उसके अंदर अवसाद का भाव जन्म लेने लगता है। जिससे उसका आत्मविश्वास टूटने लगता है। वह अपनी असफलता को भाग्य और नियति से जोड़कर देखने लगता है। कुमार भी नाटक के एक स्थल पर खुद को अकेला पाता है। कुमार खुद ही अपने शब्दों में अपनी स्थिति का बखान करता है, ''सुबह का निकला आधी रात को लौटता है अकेला आदमी। कमरे में बेहद उसके अकेलेपन की गंध ताला खोलने से लेकर बत्ती जलाने के बीच तक रोशनी होने पर कमरे का सब कुछ वही है। वैसे ही जैसे सुबह छोड़ा था। अखबार, कमीज, चाय का प्याला। कमरे और अपने भीतर का भुतहा सन्नाटा तोड़ने के लिए। अकेला आदमी अपने आप से बात करता है। चुभता है कमरे में अकेले घुसना। और मन मारे रहना। अपनी मजबूरियाँ और सपनों के साथ।''[69] इस प्रकार कुमार अकेला डरता जिम्मेदारियों से भागता युवक है। 'कुमार' अकेला नहीं रहना चाहता पर शादी भी नहीं करना चाहता है, क्योंकि शादी के बाद उसकी परिवार के प्रति एक जिम्मेदारी होगी, जिसका वह वहन नहीं करना चाहता है। ऐसा ही आज का आधुनिक युवक प्रेम तो करना चाहता है, प्रेम में काम संबंध भी बनाना चाहता है, किंतु विवाह की बात करने पर उस जिम्मेदारी से भागता है। कुमार भी कनक से प्रेम करता है और जिसके बाद शारीरिक संबंध

भी बनाता है, किंतु शादी नहीं करना चाहता। यही सत्य आज के आधुनिक समाज में नौजवानों का है। इस प्रसंग को हम कुमार और कनक के बीच होने वाली बातचीत में देख सकते हैं,

''कुमारः मेरी नौकरी चलने वाली नहीं। मैं अपने गिर्दोपेश इस तरह थक चुका हूं कि.....

कनक : मेरी नौकरी तो है।..... तुम अपने को काम करना, जब जैसे चाहों।

कुमार : अगर घर बसाऊँगा तो जिम्मेदारी से कैसे बच सकता हूँ ?

कनक : मैं तुम्हारे ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं डाल रही।

कुमार : मेरे आत्मसम्मान की भी तो बात है... जरूरत है मुझे भी। लेकिन कीमत भी बहुत बड़ी है।"[70]

अतः कुमार के रूप में सुरेन्द्र वर्मा ने एक ऐसे आधुनिक पात्र का सृजन परंपरा का आधार लेकर किया है, जो परंपरा से हटकर आधुनिक युवक है। जो अकेला है, द्वंद्व में घिरा रहता है। इन सबके कारण जिम्मेदारियों से भागता है और प्रेम का संबंध काम मात्र से समझता है। उसके आगे जिम्मेदारियाँ नहीं निभाना चाहता है।

कनक-

कनक भी शकुन्तला की भूमिका में कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से उद्धरित हुई है। किंतु सुरेन्द्र वर्मा उसे पौराणिक शकुन्तला जो परंपरावादी होती है उस रूप में कनक का चित्रण नहीं किया है, जबकि उसका चित्रण आधुनिक स्त्री के संदर्भ में किया है। कनक अपने निर्णय स्वयं लेती है। स्वच्छंद जीवनयापन करती है। वह प्रेम के नाम पर कई लड़कों से काम संबंध रखती है। वह एक कामकाजी शहरी नारी है जो परंपरा से इतर अपनी ज़िंदगी के फैसले खुद लेती है। अतःजीवन में विवाह संबंधी निर्णय भी खुद लेना चाहती है। वह इस संदर्भ में अपनी माँ से तर्क करती है,

''माँ: अब नहीं करोगी तो कब करोगी?

कनक : पता नहीं।

माँ : चंपा और चमेली के तो एक-एक बच्चा भी हो गया।

कनक : मेरी तरफ से चार-चार हो जाए।

माँ : रामस्वरूप में तुम्हें कौन सी बुराई दिलखाई देती है।

कनक : जिसमें बुराई दिखाई न दे, उससे शादी कर लो ?

माँ : अच्छा गौरी शंकर तो भला है।

कनक : (नाराज होकर) तो मैं क्या करूँ ?''[71]

अतः कनक अपने जीवन में आज की आधुनिक नारी की तरह अपने माता-पिता के निर्णय को महत्व नहीं देती। जिस प्रकार आज की नवयुवतियाँ अपनी पसंद नापसंद स्वच्छंद होकर बताती हैं उसी प्रकार कनक भी बताती है कि जीवन साथी उसे बनाया जा सकता है जिसमें कुछ समानता हो। नहीं तो जीवन की गाड़ी दूर तलक नहीं जा पाती है। वह शकुन्तला और दुष्यंत का उदाहरण देते हुए कहती है, ''लेकिन भीतरी लगाव के लिए दोनों में कुछ कॉमन भी तो होना चाहिए। कहाँ हिरण के मुंह के घाव से परेशान मासूम लड़की और कही हिंदुस्तान की पेचेदी बागडोर थामने वाला राजा...''[72]

कनक में जो एक और आधुनिक स्वभाव विद्यमान है, वह है किसी पर भरोसा नहीं करना। उसका लोगों से भरोसा उठ चुका होता है। इसलिए वह सभी को शक और शंका की नजर से ही देखती है। इस आधुनिक समाज में लोगों से धोखा खाकर वह परिपक्व बन चुकी थी। 'शकुन्तला की अंगूठी' नाटक में मानों शकुन्तला के रूप में खुद के जीवन के कटु अनुभवों को शब्दबद्ध कर रही थी,

''कनक: मैं देख नहीं पा रही। कर्णफलों का पराग आंखों में पड़ गया है।

कुमार : कहो तो मैं फूंक मारकर निकाल दूँ।

कनक : बड़ी कृपा होगी... लेकिन मुझे आपको भरोसा नहीं।

कुमार : नहीं ऐसा नहीं होगा। नया-नया सेवक स्वामी के आदेशों से आगे नहीं जाता। कनक: इन नर्मी से ही तो भरोसा नहीं हो रहा।"[73]

इस प्रकार कनक एक ऐसी आधुनिक पात्र 'शकुन्तला की अंगूठी' में है जो स्वच्छंद विचारों के साथ जीवन भी स्वच्छंद जीती है। उसके ऊपर किसी का अंकुश नहीं होता है। यहाँ तक कि माँ-बाप का भी नहीं। आज के वर्तमान परिदृश्य के भी यही हालात हैं, स्त्री या पुरुष अपनी ज़िंदगी अपने उसूलों पर जीना चाहते हैं। जिदंगी में बनते बिगड़ते धोखा खाते हालात ऐसे हो जाते है कि किसी पर भी भरोसा नहीं करते। वैसा ही कनक का भी स्वभाव हो जाता है। भोगवादी दृष्टि और एकल स्वच्छंद विचरण करना आज के युवाओं की नियति बन चुकी है। इस संदर्भ में कनक का 'शकुन्तला की अंगूठी' का सफल चित्रण सुरेन्द्र वर्मा ने किया है।

4.9 कैद-ए-हयात

'कैद-ए-हयात' नाटक भारतीय परंपरा के प्रसिद्ध शायर मिर्ज़ा ग़ालिब के जीवन परिवेश के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक का मुख्य पात्र है तो ग़ालिब, लेकिन यह नाटक न उन्हें ऐतिहासिक पुरुष के रूप में चित्रित करता है और न उन्हें उनकी रचना के लिए महान शायर ही सिद्ध करता है। सुरेन्द्र वर्मा नाटक के फ्लैप पृष्ठ पर लिखते हैं, "यह गालिब के जीवन का दस्तावेजी नाट्यलेख नहीं है, बल्कि वे यहाँ एक प्रतीक की हैसियत से मौजूद हैं। गालिब के जीवन सन्दर्भों के सहारे रचनाकार के तनावों से रू-ब-रू करवाते हैं और हम देखते हैं कि रचनाकार के युग परिवेश को नहीं, उसके सामाजिक पारिवारिक और बेहद निजी संसार को भी हमारे सामने खोलता आ रहा है।"[74] अतः नाटककार की उपलब्धि इस संदर्भ में है कि उन्होंने गालिब के माध्यम से साहित्यकारों के संघर्षमय जीवन, लेखकीय चुनौतियों को भी बखूबी प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत नाटक में दिखाया गया है कि अपने समय के इतने बड़े शायर गालिब की ज़िंदगी कैसे भिन्न हालातों से घिरी हुई थी। उनके आसपास निजी, समाजी और सियासी जो माहौल था, साथ ही शायरी की जो एक बड़ी जिम्मेदारी

थी उनके ऊपर वो उन्हें हमेशा घेरे और बांधे रखती थी। एक का निर्वाह करने पर दूसरे की नाराजगी झेलनी पड़ती थी। बहुत छोटी उम्र में पिता के देहांत के उपरांत उनका लालन-पालन ननिहाल में हुआ था। शादी भी मात्र 13 वर्ष की छोटी उम्र में हुई थी। जिसके पश्चात् जीवन यापन के लिए दिल्ली, लखनऊ, बनारस और कोलकत्ता आदि शहरों में भटकते रहे। आठ संतानें उनकी हुई, किन्तु सभी की मृत्यु हो गई जिससे वह निःसंतान ही रहे। आर्थिक दशा भी उनकी दीन-हीन थी। इस बात का ज्ञान नाटककार ने खुद गालिब की पत्नी 'उमराव' से करवाया है, ''हज्जाम, धोबी, मिस्त्री, खां रोब-किसी को चार माह से उजरत नहीं मिली। मालिके मकान को किराया नहीं चुकाया गया। महाजन आशिक-बेताब की मानिंद दहलीज पै सिजदे किए जा रहे हैं।''[75] नाटककार इस नाटक के माध्यम से यह बताना चाहता है कि साहित्यकारों का जीवन हमेशा से कष्टों में और संघर्ष से भरा रहा है। कबीर, निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन आदि साहित्यकारों की भांति गालिब की जिन्दगी भी कष्टों और समस्याओं से घिरी हुई थी। खुद गालिब शायरी में इतने रमे हुए थे कि उन्हें घर-परिवार की सुध ही नहीं रहती थी। उनकी पत्नी उनकी गरीबी और हालात के लिए जिम्मेदार उनकी शायरी को बतलाती थीं,

''आपा: (उलहाने से) तुम शायरी के पीछे लट्ठ लिए क्यों पड़ी हो?

उमराव : चूंकि इस गर्दिशे-पैहम की वही जिम्मेदार है।... यही तो मैं भी कहती हूँ, यही तो मैं चाहती हूँ, लेकिन इनकी नींव इतनी गहरी और उस पर तामीर की गई खुद्दारी इतनी बुलंद है कि उसने शख्सियत से वो तवजन हटा दिया जो इंसान को सुखनवरी के बावजूद खानदान बनाए रखता है और इसकी सबसे ज्यादा सजा भुगतनी पड़ती है बेचारी बीबी को।''[76] ग़ालिब को पारिवारिक समस्याओं के अलावा सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ा था। ग़ालिब के चाचा की सम्पत्ति फिरोजपुर झिकी के नवाब अहमदबख्श खां को सौंप दी गई थी। जिसके बदले में उनके परिवार को दस हजार सलाना देना तय हुआ था। जिसमें से ग़ालिब के हिस्से में 750 रुपये आते थे। लेकिन एक राजनीति द्वारा नवाब अहमदबख्श खां ने लॉर्ड लेक से मिलकर दस हजार की रकम को

कम करवा कर पांच हजार तय करवा दिया। इतनी ही नहीं, इस सम्पति में एक अन्य किसी व्यक्ति को हिस्सेदारी दिलवा दी। अंततः इन सभी राजनैतिक साजिशों के कारण ग़ालिब का जीवन और भी समस्याओं से भर गया था। इन सबसे लड़तें हुए ग़ालिब अदालतों के चक्कर लगाते फिरते थे। जिसके लिए दिल्ली और कलकत्ता की अदालतों में रिश्वत भी देनी पड़ी थी। इस बात का संज्ञान शीरी और ग़ालिब की बातचीत से मिलता है, ''शीरी : क्या आपको भी कुछ रिश्वत देनी पड़ी थी ?

मिर्ज़ा-राज को राज ही रहने दीजे, वर्ना इंसाफ से लोगों का यकीन उठ जाएगा।''[77]

ग़ालिब की उर्दू-शायरी ने एक अलग मुकाम हासिल किया है। जिनकी शायरी आज मिसाल बन चुकी है। ग़ालिब की शायरी में लोगों की ज़िंदगी दिखती है। उनकी शायरी में प्रेम, दर्द, ज़ज्बात हैं, कम शब्दों में समेटें तो उनकी शायरी में ज़िंदगी के हर पहलू दिखते हैं। ग़ालिब की शेर-ओ-शायरी से कोई भी विषय अछूता नहीं रहा है। यह ग़ालिब की शायरी की विशेषता रही है। ग़ालिब की शायरी ने देश की सीमाओं को पार कर लिया है। अतः समय के साथ कम शब्दों में ज़ज्बाते बयां बन गई ग़ालिब की शायरी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ग़ालिब जैसे शायर को अपने नाटक में मुख्य पात्र के रूप में चयन कर उसकी ज़िदंगी से जुड़े पहलुओं पर नाटककार ने रोशनी डाली है, जो सराहनीय है। इसके अलावा ग़ालिब के जीवन संघर्ष को आज के लेखकों के जीवन संघर्ष के साथ जोड़कर दिखाया और उसका वर्णन आधुनिक संदर्भों में किया है। इस सन्दर्भ में यह नाटक एक सफल नाटक है, यह कहना गलत नहीं होगा। जिस तरह से ग़ालिब का निजी, सामाजिक-राजनैतिक जीवन साहित्यकार के रूप में कष्टों और चुनौतियों से भरा हुआ था, वैसे ही आज के समकालीन साहित्यकारों की ज़िदगी भी चुनौतियों एवं संघर्षों से भरी पड़ी है। इसके अतिरिक्त आलोचकों और विरोधियों के व्यंगों का सामना भी करना पड़ता है तथा उसका प्रत्युत्तर देते हुए अपने सृर्जनात्मक कार्यों में निरंतर लिप्त रहना

पड़ता है। अतः सुरेन्द्र वर्मा ने ग़ालिब को प्रतीक रूप में इस नाटक में स्थापित कर आधुनिक युग परिवेश में साहित्यकारों के जीवन को सार्थक रूप में चित्रित किया है।

मिर्ज़ा नौशा ग़ालिब-

'कैद-ए-हयात' नाटक में मिर्ज़ा ग़ालिब के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने रचनाकार के निजी, समाजिक और राजनैतिक जीवन से जुड़ी समस्याओं और तनावों को व्यक्त किया है। जिस प्रकार एक रचनाकार अपनी रचनाधर्मिता में लीन होने पर अपने निजी जीवन की सुध-बुध नहीं ले पाता वैसे ही ग़ालिब भी शायरी करने में मसगूल वह अपने परिवार की ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं। इससे कई घरेलू दिक्कतें आ जाती हैं। नाटककार ग़ालिब और नाटक के सदर्भ में प्रथम पृष्ठ पर ही लिखता है, ''नाटक मिर्ज़ा ग़ालिब के जीवन का ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि उनके माध्यम से प्रतीक रूप में किसी भी समसामायिक युग पुरुष के बहुविध तनावों को समझाने की कोशिश है, जो रचनाक्रम में परिपाटी तोड़ने वाले रचनाकार को झेलने पड़ते हैं- अपने सहकारियों के बीच, समाज के बीच, परिवार के बीच और स्वयं अपने बीच।''[78] ग़ालिब का जीवन के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण है। उन्होंने शायरी को एक नए और उच्चतम शिखर तक पँहुचा दिया। उनकी शायरी में ज़ीवन का रस छिपा है। वो लिखते हैं, ''नहीं थी रोक कोई आशियां से आस्मा तक की कि बचाते किस तरह बिजली से अपना आशियाँ यारब।''[79] इस शेर की समकालीन शायरों ने खूब तारीफ की तथा इसे बेहतरीन शायरी कहा, कितु ग़ालिब ने इसे अपने नये अंदाज में कहा, ''नहीं थी आस्मा से रोक जो शाखे नशेमन तक बचाते किस तरह बिजली से अपना आबसी यारब।''[80]

इस प्रकार ग़ालिब ने एक लेखक के रूप में अपनी निजी ज़िंदगी में तमाम मुसीबतों का सामना किया, किन्तु अपने शेरो से ज़िंदगी को देखने का इस दुनिया को एक अंदाज़ एक नजरिया दिया। अतः नाटककार ने ग़ालिब की ज़िंदगी और उसके संघर्ष के माध्यम से आज के आधुनिक लेखकों के संघर्ष को भी दिखाने का नाटक में प्रयत्न किया है।

उमराव-

उमराव का चित्रण नाटककार ने एक मुस्लिम समाज की परंपरावादी नारी के रूप में किया है। जो सारे दुखों को सह कर कभी भी शिकायत नहीं करती है। उमराव ग़ालिब की पत्नी है और उसे पता है कि ग़ालिब की शायरी की वजह से सारी घरेलू दिक्कतें आ रही हैं, किंतु वह कभी भी शिकायत नहीं करती है। वह आपा से बात करते हुए कहती है, ''इनकी तवअशायरी की नींव इस कदर गहरी और उस पै तामीर की गई खुद्दारी इतनी बुलंद है कि उसने शख्सियत से वो तवाजन हटा दिया, जो इंसान को सुखनवरी के बावजूद खानदार बनाए रखता है। (फीकी हंसी से) और इसकी सबसे ज्यादा सजा भुगतनी पड़ती है बेचारी बीवी को।"[81]

आज भी परंपरावादी भारतीय नारी 'उमराव' की तरह सारी दिक्कतें-परेशानियों को झेलकर भी कभी उसकी शिकायत नहीं करती है। लेकिन 'उमराव' का आधुनिक चरित्र तब उभर कर सामने आता है जब ग़ालिब उसकी उपेक्षा करता है और कातिबा से मिलने के लिए उतावला होता रहता है। 'उमराव' उसे चेतावनी देते हुए कहती है, ''तो फिर यह भी जान लीजिये कि आज आपने दहलीज के बाहर कदम रखा तो हमारे बीच कोई चीज हमेशा के लिए टूट जाएगी।''[82]

इस प्रकार नाटककार उमराव के रूप में प्रारंभ में तो एक परंपरावादी नारी का चित्रण करते हैं, किंतु बाद में 'उमराव' में एक आधुनिक चरित्र की सृष्टि भी करते हैं जो अपने रिश्ते को टूटता देख विरोध करते हुए ग़ालिब को जिसने कभी अपने दुखों को उसे नहीं बताया, उसे चेतावनी तक दे देती है।

4.10 रति का कंगन

'रति का कंगन' सुरेन्द्र वर्मा कृत यह अब तक का उनका आख़िरी नाटक है। मिथकीय कथा, परंपरागत देश-काल और वातावरण, नाट्यभाषा तथा पात्रों का संयोजन आधुनिक भाव-बोध के साथ सुरेन्द्र वर्मा ने इतनी खूबसूरती से किया है कि ऐसा प्रतीत होता है मानों ये हमारे वास्तविक ऐतिहासिक पात्र हों। जिसके माध्यम से आज के आधुनिक व्यक्ति के उच्च शैक्षणिक जगत में

सफलता-असफलता, शोध-जगत में शोधार्थी एवं शोध-निर्देशक के साथ विभिन्न परिस्थितियों व्यक्तिगत प्रेम, काम और उससे उपजे संबंधों को उद्घाटित करता है। साथ ही आज के समय में रचनाकार की रचनाओं का प्रकाशकों द्वारा सही मूल्य नहीं देना आदि विषयों को भी बड़ी गंभीरता से चित्रित किया गया है। नाटककार ने इस नाटक को बड़े ही संक्षिप्त शब्दों में व्यक्त भी किया है। वह लिखते हैं, "दिव्य के पीछे कभी गर्हित भी होता है- लेकिन गर्हित का ही रूपांतर फिर दिव्य में हो जाने की क्षत-विक्षत नाट्य- कथा है-'रति का कंगन' ।"[83] इस नाटक का मुख्य नायक 'मल्लिनाग' है। जिसका चित्रण एक परम स्वार्थी के रूप में नाटककार ने नाटक के प्रारंभ में ही किया है। मल्लिनाग जो बिना किसी स्वार्थ सिद्धि के कोई काम नहीं करता है और किसी की मदद भी बिना स्वार्थ के नहीं करता है। स्वार्थ के सन्दर्भ में उसका मत होता है कि यह एक गरिमापूर्ण भावना है और यह भावना जिस व्यक्ति के जीवन के केंद्र में होती है अर्थात् इसका महत्त्व जानता है, वह सदा ही सुखी होता है और मल्लिनाग के अनुसार स्वार्थी इंसान हमेशा ही धनवान होता है, "मल्लिनाग : मेरा मानना है तात कि स्वार्थ सकारात्मक और गरिमाभरी भावना है। जिस व्यक्ति के जीवन में यह केंद्रीय होती है, उसे विकास राजमार्ग पर आगे बढ़ने के लिए सदा प्रेरित करती है। स्वार्थ का संबंध किसी न किसी रूप में अर्थ से होगा ही। इसीलिए स्वार्थी और कुछ चाहे हो या न हो, धनवान अवश्य होगा।"[84] पात्र के रूप में मल्लिनाग का मूल्यांकन करें तो यह आज के आधुनिक मानव का ही प्रतिनिधि पात्र है, जो स्वार्थी हो चुका है। आज का मनुष्य जिस प्रकार से बिना स्वार्थ के दूसरे का कार्य या मदद नहीं करना चाहता है या नहीं कर रहा, उसी का प्रतिरूप मल्लिनाग है। मल्लिनाग के अन्दर आधुनिक मनुष्य की वह सभी नकारात्मक प्रवृत्तियाँ हैं जिससे वह पथभ्रमित होता है। प्रेम के प्रति उसकी कोई श्रद्धा नहीं है। अनैतिक संबंधों में ही जीवन का सुख और जीवन लक्ष्य मानता है। इस सन्दर्भ में सूत्रधार और मल्लिनाग के बीच तर्क भी होता है। जिसमें मल्लिनाग का प्रेम सीमित है। प्रेम जैसी भावनाओं में उसकी कोई विशेष आस्था नहीं है और प्रेम को वह सीमित आत्मीयता का बस लेनदेन मानता है, "मल्लिनाग : (आत्मविश्वास की मुस्कान से) विश्वामित्र

पुरातनपंथी भावना संस्कृति के कार्यकर्ता थे। (उपहास के सुर में) वह प्रेम करते थे, प्रतिबद्धता का स्थापत्य रचते थे। मैं उत्तर भावना काल का नागरिक हूँ– मैं प्रेम नहीं करता; अन्तरंग लेकिन सीमित आत्मीयता का लेन-देन करता हूँ।"[85]

मल्लिनाग खुद को आनंद मार्ग का मुक्त पथिक कह कर खुद को संबोधित करता है और उसे यह पूरा भरोसा होता है कि वह कभी भी प्रेम प्रतिबद्धता जैसी भावनाओं में नहीं बंध सकता है। किन्तु श्रीवल्लरी के संपर्क में आने के बाद उसका भोगवादी दृष्टिकोण बदल जाता है। प्रेम और प्रतिबद्धता संबंधी उसकी धारणा बदल जाती है और वह यह कहता है कि उसकी प्रेम संबंधी धारणा बदल गई है। उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये हैं। उसे भी प्रेम हो गया है, "मल्लिनाग : श्रीवल्लरी, तुम मेरी कामना कुंकुम और भावना बसंत हो। अब तुम्हारे दायीं ओर, मेरे जीवन का सत्य है। श्रीवल्लरी : (उपहास से) उत्तर भावना काल में रस सिद्धांत युग का लिजलिजा प्रणय-निवेदन ? विवाह संस्था पिछले संवत्सर में छूट चुकी। तुम भी वहीं लौट जाओ।"[86] इस प्रकार मल्लिनाग का जब आत्म परिवर्तन होता है और प्रेम के प्रति उसकी आस्था जन्म लेती है तो श्रीवल्लरी उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। जिससे वह टूट जाता है और कभी भी स्त्री का मुँह नहीं देखूँगा कहकर अपने आवेश को प्रकट करता है। मल्लिनाग और श्रीवल्लरी आधुनिक युग के ऐसे प्रतिनिधि पात्र हैं, जिनकी प्रेम और विवाह जैसी परंपरा में कोई आस्था नहीं है। प्रतिबद्धता और समर्पण उनके लिए जीवन के भौतिक सुखों में अवरोधक तत्व हैं। इसीलिए प्रेम के प्रसंग में मल्लिनाग और श्रीवल्लरी द्वारा मानना और अवमानना का यह खेल स्वतः ही देखा जा सकता है जो कि आधुनिक मानव स्वभाव की विडंबना है।

नाट्य कथा में आगे मल्लिनाग जब शोध (पीएच.डी.) करने आचार्य लवंगलता से मिलता है तो वह उच्च शिक्षा में होने वाले शोषण तंत्र में फंस जाता है। परिणाम स्वरूप मल्लिनाग की शोध-निर्देशिका बनने के बाद लवंगलता मल्लिनाग का यौन शोषण करती है। आज तक के पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों द्वारा ही स्त्रियों का यौन शोषण का चित्रण हमें साहित्य रचना संसार में पढ़ने को

मिलता रहा है, किन्तु यहाँ विपरीत स्थिति है कि एक पुरुष स्त्री द्वारा शोषित होता दिखता है। सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक के इस अंश में न केवल उच्च शिक्षा में शोधार्थियों का शोषण दिखाया है, बल्कि आज के उत्तर-आधुनिक युग में इस शोषण में स्त्रियों की भागीदारी को भी रेखांकित किया है। नाटककार सुरेन्द्र वर्मा नाटक के इस अंश से यह बात रेखांकित करना चाहते हैं कि आज इस आधुनिक युग का एक और कटु सत्य और यथार्थ बनता जा रहा है कि यौन-शोषण तंत्र में स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी फँसते जा रहे हैं। जहाँ शैक्षणिक जगत से लेकर नौकरियों तक में आप सिर्फ अपने अधिकारियों के हाथों की कटपुतली बन कर रह जाते हैं। किन्तु अब भी यह मुकम्मल यथार्थ नहीं कहा जा सकता है। नाटक के इस अंश में मल्लिनाग शोषण के इस तंत्र में ऐसा फँसता है कि अंततः उसे न डिग्री मिलती है न नौकरी। उच्च शिक्षा में मल्लिनाग शोषित और उपेक्षित होने के पश्चात् जीविकापार्जन हेतु लेखन कार्य प्रारंभ करता है। जहाँ वह परमहंस के सम्पादक 'संदीपन' नामक पात्र से मिलता है और संदीपन उसे कामशास्त्र लिखने का सुझाव देता है। वह कहता है कि इस तरह की कोई भी श्रेष्ठ रचना इस समय पाठक वर्ग के पास उपलब्ध नहीं है, "ऐसी पुस्तक की ठोस आवयश्कता है इस समय। सामान्य पाठकों को तो छोड़ो, यौन अध्ययन केन्द्र का पाठ्यक्रम भी कामचलाऊ माना जाता है।"[87] संदीपन के सुझाव पर मल्लिनाग स्त्री के साथ अपने सम्पूर्ण अनुराग, अनुभव और अपने ज्ञान के समावेश से कामसूत्र पर आधारित एक नवीन और बेहतरीन पुस्तक की रचना करता है, जिसकी पांडुलिपि वह प्रकाशन हेतु परमहंस के सम्पादक संदीपन को सौंप देता है। कालांतर में यह पुस्तक चारों दिशा में विक्रेताओं में काफी चर्चित हो जाती है और इसकी एक लाख प्रतिलिपियों के लिए संदीपन को एक बड़ी रकम मकरंद नामक एक विक्रेता देता है और कहता है कि जल्दी ही आपकी इस पुस्तक की इतनी बिक्री होगी कि आप कोटिपति बन जाएँगे। इसके पश्चात् संदीपन में लालच पनपता है और कामसूत्र पुस्तक के लेखक मल्लिनाग को अँधेरे में रखता है कि पुस्तक की बिक्री के सन्दर्भ में अभी तक निराशा ही हाथ लग रही है और वह एक सम्पादक के रूप में घाटे में ही है। मल्लिनाग को उसकी इस रचना के लिए संदीपन उचित लेखकीय मेहनताना शुल्क

भी नहीं देता है। इसके विपरीत संदीपन मल्लिनाग को अँधेरे में रखता है और कहता है कि, " संदीपन: परमहंस प्रकाशन पर ताला पड़ने की नौबत आ गयी। कौन-सी काली घड़ी में यह मनहूस काम हाथ में लिया था ? यह 'कामसूत्र' है यह मेरा वामसूत्र है ? तुम्हारा ग्रंथ मेरी लुटिया डुबाने को उतारू है। (भारी बोझ-तले दबकर चलने की मुद्रा में आते हुए) अभी पच्चीस सुलेखकों के भुगतान के बोझ से दबा हुआ चल रहा हूँ।"[88] इसके उपरान्त भी संदीपन मल्लिनाग पर कई अभियोग लगा कर उसे जेल भिजवा देता है।

नाटक का यह प्रसंग आज के समकालीन समाज में मनुष्य किस प्रकार झूठ, आडम्बर और धोखे से धन अर्जित करना चाहता है उसका यह जीवंत उदाहरण है। अतः सुरेन्द्र वर्मा यहाँ लेखक और प्रकाशक के माध्यम से हमे आज के उस सच से अवगत करवाते हैं जहाँ एक इंसान दूसरे की मेहनत की क़द्र तो दूर की बात है, उसके हिस्से की मेहनत का सुख भी खुद भोग लेना चाहता है। इस दृष्टि से यहाँ आधुनिक समाज और मानव का भौतिक सुखों के पीछे जड़ होते चिंतन और चरित्र का चित्रण बखूबी किया गया है।

नाट्य कथा में आगे मल्लिनाग इन जीवन के अनुभवों से संघर्ष करते, टूटते संभलते हुए मेघाम्बरा नामक युवती से सच्चा प्रेम करता है। मल्लिनाग के प्रेम को मेघाम्बरा स्वीकार करती है, किन्तु मल्लिनाग का संबंध मेघाम्बरा के साथ भी स्थायित्व नहीं पाता और अंततः मल्लिनाग सभी सांसारिक मोह-माया का परित्याग कर वैरागी-सन्यासी बन जाता है। इस प्रकार सुरेन्द्र वर्मा का यह नाटक भी आधुनिक मानवीय रिश्तों के बनने-बिगड़ने की गाथा है, ऐसा कहा जाए तो गलत नहीं होगा। इसके अतिरिक्त यह नाटक मल्लिनाग के माध्यम से आज के उस व्यक्ति विशेष को चित्रित करता है, जिसके जीवन का केंद्रीय लक्ष्य भौतिक मांसल सुखों को ही पाना है, साथ ही स्वार्थ लिप्त जीवन ही जीवन में सफलता का आधार है। अंततः मल्लिनाग एक आधुनिक मानव के लिए उदाहरण के समान है जिसमें यह संकेत किया गया है कि आधुनिक समाज में हम कितना भी स्वार्थ लिप्त होकर भौतिक सुखों के पीछे दौड़ें, किन्तु शांति और आत्मीय सुख वही प्राप्त करता है, जहाँ

हमारी जड़ है अर्थात् अपने परंपरागत मूल्य में जो मानवीय मूल्यों से बनी अवधारणा पर केन्द्रित हैं। जिसका मूल आधार लोकवादी रहा है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों में ऐतिहासिक पात्रों एवं मिथकीय कथा के माध्यम से एक से एक उत्कृष्ट नाटक का लेखन किया है। जिसके माध्यम से निरर्थक जीवन मूल्यों को नकारा है। आज भारतीय समाज किस ओर जा रहा है, उस ओर इंगित किया है। इसके अलावा आज समाज पश्चिमी सभ्यता और परंपरा की ओर किस प्रकार अंधाधुंध बढ़ रहा है। किस प्रकार आज रिश्तों का महत्व खत्म होता जा रहा। कैसे आज इस तिजारते युग में मानव वस्तु बन बैठा है। कैसे रिश्तों का हो रहा धंधा है, इसे बखूबी अपने नाटकों में सुरेन्द्र वर्मा ने चित्रित किया है।

समग्र रूप में सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों को एक बार देखें तो 'द्रौपदी' नाटक में समकालीन युग बोध का वर्णन किया गया है। जहाँ महानगरीय जीवन मूल्यों को बदलते दिखाया गया है। 'सेतुबंध' नाटक में आधुनिक मानव के द्वंद्व को दिखाया है तथा उनके अस्तित्व संकट की समस्या उजागर किया गया है। 'नायक-खलनायक विदूषक' नाटक में व्यवसाय के आगे मनुष्य की स्वतंत्रता के प्रश्न के महत्त्व को उठाया गया है, साथ ही रंगमंच की उपेक्षा और कलाकारों की निष्ठा पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया गया है। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में नियोग जैसी परंपरा और प्रथा से आगे व्यावहारिकता पर जोर दिया गया है। साथ ही पति-पत्नी के बीच कामभावना और रति संबंधी मुद्दों को भी महत्व देते हुए नाटक में स्थान दिया है। 'आठवां सर्ग' में कालिदास के माध्यम से साहित्य में श्लीलता और अश्लीलता के प्रश्न को उठाया गया है तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे समकालीन ज्वलंत मुद्दों को बेबाकी से उठाया गया है। 'छोटे सैयद बड़े सैयद' में इतिहास के माध्यम से आधुनिक चेतना पृष्ठभूमि पर समकालीन राजनैतिक हालातों पर प्रकाश डाला गया है। जिसका प्रभाव परोक्ष रूप से समाज पर ही पड़ता है। 'एक दूनी एक' नाटक' में 'द्रौपदी' के समान स्त्री-पुरुष के बीच की काम भावना एवं विवाह जैसी परंपरा में अनास्था को चित्रित किया गया है। 'शकुन्तला

की अंगूठी' नाटक में काम भावना का चित्रण किया गया है। इसमें भी प्रेम एवं विवाह का अर्थ बस काम ही है। भावना का कोई स्थान नहीं है, आज के आधुनिक समाज में भी यह भावना प्रबल होती जा रही है। 'शकुन्तला की अंगूठी' में सुरेन्द्र वर्मा ने स्त्रियों को आधुनिक रूप में ही चित्रित किया है, जो किसी भी पुरानी परंपरा और मूल्यों में बंधकर नहीं रह सकती हैं। वे प्रेम से लेकर रति तक, जीवन शैली से लेकर जीवन साथी चुनने तक, सभी में स्वच्छंद विचरण करना चाहती हैं। अतः आज जिस आधुनिकता की परिभाषा गढ़ी जा चुकी है, वे उसमें ही ढलकर रच-बस जाना चाहती हैं। 'कैद-ए-हयात' में मिर्जा ग़ालिब को प्रतीक रूप में चित्रित कर साहित्यकारों के निजी, सामाजिक और राजनैतिक संघर्षों को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। अन्ततः 'रति का कंगन' नाटक के माध्यम से आज के आधुनिक मानव का मांसल प्रेम और उच्च शिक्षा जगत में चल रहे शोषण तंत्र को दिखाया गया है।

नाटकों में पात्रों का विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि कोई पात्र परंपरा का वाहक है तो कोई आधुनिकता का। किंतु यह निर्भर करता है उस पात्र के मनोविज्ञान पर, उसकी परिस्थितियों तथा परिवेश आदि पर। 'द्रौपदी' नाटक की सुरेखा और 'सेतुबंध' की 'प्रभावती' तथा 'आठवां सर्ग' की प्रियंगुमंजरी में कमोवेश समानता असमानता है । प्रभावती, सुरेखा और प्रियंगुमंजरी परंपरागत स्त्री है। लेकिन सुरेखा जब अपनी पुत्री से खुल कर उसके जीवन के बारे में बात करती है तो वह आधुनिक दिखती है। इसी प्रकार प्रभावती परंपरागत नारी के रूप में जीवन व्यतीत करते रहती है, किंतु पुत्र के अपने अस्तित्व पर सवाल करने पर आधुनिक नारी की भांति तर्क देती है। अतः प्रभावती के भी इस स्थान पर आधुनिक रूप का पता चलता है। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में शीलवती द्वारा नाटक के आरंभ में परंपरा का पालन कर एक परंपरागत स्त्री की छवि उभर कर सामने आती है, किंतु धर्मनटी बनने के पश्चात् मानो उसे जीवन के सही अर्थों का अनुभव हो जाता है और वह आमात्यपरिषद् से लेकर अपने पति ओक्काक तक से आधुनिक स्त्री की भांति अपनी आकांक्षाओं को खुलकर जग जाहिर करती है। शकुंतला की

अंगूठी में 'कनक' एक आधुनिक स्त्री की तरह स्वच्छंद जीवन यापन करती है और वर्तमान समय में सभी भौतिक सुखों का उपभोग करती है।

पुरुष पात्रों में 'सेतुबंध' का प्रवरसेन और 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' का ओक्काक सामन्ती विचारों वाले शासक हैं। प्रवरसेन अपनी माता के प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाता तो ओक्काक अपनी पत्नी का 'धर्मनटी ' से 'कामनटी' बनाना स्वीकार नहीं करता रहता है। ये दोनों ही स्त्री को पुरुषवादी मानसिकता से ही देखते हैं। द्रौपदी नाटक का पात्र मोहन खण्डित रूप का महानगरीय आधुनिक रूप है, जो सारे बुरे कर्मों में लिप्त है। जिसके कुल पाँच रूप हैं। 'शकुन्तला की अंगूठी' का 'कुमार' व्याभिचारी, यौनचारी तथा अकेला टूटा हुआ व्यक्तित्व का मनुष्य है।

अतः सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में यदि पात्रों के माध्यम से परंपरा और आधुनिकता की पड़ताल करें तो लगभग सभी मुख्य पात्र परंपरा या आधुनिकता से साम्य-वैषम्य रखते हैं। सभी पात्र आज के आधुनिक जीवन का चित्रण करने में काफी हद तक सफल हैं। साथ ही कई पात्र पुरानी परंपरा का खण्डन कर आधुनिकता को स्वीकार करते मिलते हैं, तो कोई उसका निर्वाह करते हैं। अतः इस संदर्भ में सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों के पात्र परंपरा और आधुनिक विचारों और उनके लक्षणों का वहन करते दिख जाते हैं, ऐसा कहना गलत नहीं होगा।

संदर्भ-

1. वर्मा, सुरेन्द्र; हिंदी नाटक का आत्म संघर्ष; लोक भारती प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2002; पृ 203.
2. पाल, विजय; सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध; नीरज बुक सेंटर, पटपड़गंज, दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 12.
3. बेदी, सुषमा; हिंदी नाट्य: प्रयोग के सन्दर्भ में; पराग प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली; संस्करण, 1984. पृ 111.
4. वर्मा, सुरेन्द्र; तीन नाटक; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2005; पृ 32.
5. वही; पृ 33.
6. वही; पृ 33, 34.
7. वही; पृ 35.
8. वही; पृ 31.
9. वही; पृ 38.
10. रस्तोगी, गिरीश; समकालीन हिंदी नाटककार; इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर, नई दिल्ली; संस्करण, 1982; पृ 65.
11. वर्मा, सुरेन्द्र; द्रौपदी; तीन नाटक; वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली; संस्करण, 2005; पृ 31.
12. वही; पृ 35.
13. वही; पृ 36 .
14. वही; पृ 38.
15. वही; पृ 30, 35.
16. वही; पृ 34.
17. वही; पृ 63.
18. वही; पृ 32.
19. वही; पृ 32.
20. वही; पृ 33.

21. वही; पृ 34.

22. रस्तोगी, गिरीश; समकालीन हिंदी नाटककार; इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर, नई दिल्ली; संस्करण, 1982; पृ 64.

23. चंद्रशेखर; समकालीन हिंदी नाटक: कथ्य चेतना; आत्मा राम एंड सन्स, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली; संस्करण, 1982; पृ 292.

24. वर्मा, सुरेन्द्र; तीन नाटक; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2005; पृ 54.

25. वही; पृ 69.

26. चंद्रशेखर; समकालीन हिंदी नाटक: कथ्य चेतना; आत्मा राम एंड सन्स,कश्मीरी गेट नई दिल्ली; संस्करण, 1982; पृ 292.

27. वही; पृ 293.

28. वर्मा, सुरेन्द्र; तीन नाटक; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2005; पृ 41.

29. रस्तोगी, गिरीश; समकालीन हिंदी नाटककार; इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर, नई दिल्ली; संस्करण, 1982; पृ 57.

30. चंद्रशेखर; समकालीन हिंदी नाटक: कथ्य चेतना; आत्मा राम एंड सन्स, कश्मीरी गेट नई दिल्ली; संस्करण, 1982; पृ 293.

31. रस्तोगी, गिरीश; समकालीन हिंदी नाटककार; इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर, नई दिल्ली; संस्कर, 1982; पृ 62.

32. वर्मा, सुरेन्द्र; तीन नाटक; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2005; पृ 102.

33. वही; पृ 85.

34. वही; पृ 81, 82.

35. वर्मा, सुरेन्द्र; द्रौपदी; तीन नाटक; वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली; संस्करण, 2005; पृ 74.

36. वही; पृ 76.

37. वही; पृ 102.

38. वही; पृ 82, 83.

39. वही; पृ 75.

40. वही; पृ 130.

41. वर्मा, सुरेन्द्र; सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1976; पृ 19.

42. पाल, विजय; सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध; नीरज बुक सेंटर पटपड़गंज, दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 31.

43. वही; पृ 31.

44. वही; पृ 31, 32.

45. वही; पृ 32.

46. वर्मा, सुरेन्द्र; सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक; राधा कृष्णप्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1976; पृ 23, 24.

47. वही पृ 37.

48. पाल, विजय; सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध; नीरज बुक सेंटर पटपड़गंज, दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ, 76.

49. वर्मा, सुरेन्द्र; सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1976; पृ 19.

50. वही; पृ 52.

51. वही; पृ 54.

52. वही; पृ 43.

53. पाल, विजय; सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध; नीरज बुक सेंटर पटपड़गंज, दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 35.

54. वर्मा, सुरेन्द्र; सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरयागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1976; पृ 55, 56.

55. वही; पृ 54, 55.

56. वही; पृ 56.

57. वही; पृ 72.

58. वर्मा, सुरेन्द्र; सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरयागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1976; पृ 55, 56.

59. वही; पृ 58.

60. वही; पृ 72.

61. पाल, विजय; सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध; नीरज बुक सेंटर पटपड़गंज, दिल्ली; संस्करण,2013; पृ 40, 41 .

62. वही; पृ 43.

63. वर्मा, सुरेन्द्र; एक दूनी एक; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1987; पृ 129 .

64. पाल, विजय; सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध; नीरज बुक सेंटर पटपड़गंज, दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 46 .

65. वर्मा, सुरेन्द्र; एक दूनी एक; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1987; पृ 36 .

66. वर्मा, सुरेन्द्र; शकुन्तला की अंगूठी; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली; पहला संस्करण, 1990, पृ 61.

67. वही; पृ 54, 55.

68. वही; पृ 75.

69. पाल, विजय; सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध; नीरज बुक सेंटर पटपड़गंज, दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 87, 88.

70. वही; पृ 88 .

71. वही; पृ 89 .

72. वही; पृ 89 .

73. वही; पृ 89 .

74. वर्मा, सुरेन्द्र; कैद-ए-हयात; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली; पहला संस्करण, 1993; पृ. फ्लैप पृष्ठ.

75. वही; पृ 14.

76. वही; पृ 17.

77. वही; पृ 60.

78. पाल, विजय; सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध; नीरज बुक सेंटर पटपड़गंज, दिल्ली; संस्करण, 2013; पृ 90 .

79. वही; पृ 90 .

80. वही; पृ 90 .

81. वही; पृ 91 .

82. वर्मा, सुरेन्द्र; कैद-ए-हयात; राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली; पहला संस्करण, 1993; पृ 71 .

83. वर्मा, सुरेन्द्र; रति का कंगन; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; लोधी रोड नई दिल्ली; प्रथम संस्करण, 2011; पृ फ्लैप पृष्ठ.

84. वही; पृ 10.

85. वही; पृ 20.

86. वही; पृ 24.

87. वही; पृ 62.

88. वही; पृ 83.